

सभाष्यरत्नमञ्जूषा

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : संस्कृत ग्रन्थांक-५

अज्ञातनामधेयजैनग्रन्थकृद्विरचिता

सभाष्या रत्नमञ्जूषा

सम्पादन

हरि दामोदर वेलणकर



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर नि० संवत् २४७५ : वि० संवत् २००६ : सन् १९४९

प्रथम संस्करण : मूल्य पाँच रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

●

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ. हीरालाल जैन, एम. ए., डी. लिट्.
डॉ. आ. ने. उपाध्ये, एम. ए., डी. लिट्.

●

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : बी/४५-४७, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी

●

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७०, विक्रम सं० २०००, १८ फरवरी १९४४



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

प्रास्ताविकं किञ्चित्

भारतीय ज्ञानपीठ के अनुसन्धान विभाग में विभिन्न विषय के संस्कृत प्राकृत भाषा के अनेक ग्रन्थों का सम्पादन चालू है। मूल ग्रन्थ प्रामाणिक रीति से उपलब्ध प्राचीन प्रतियों के आधार से सम्पादन के साथ ही साथ यथासंभव हिन्दी अनुवाद, संस्कृत हिन्दी या अंग्रेजी में टिप्पणी तथा अनुक्रमणिका परिशिष्ट आदि सहित सर्वाङ्ग सुन्दर प्रकाशित होते हैं। प्रस्तावना में जहाँ मूल ग्रन्थ के विविध मुद्दों का स्पष्टीकरण करने का क्रम है वहाँ ग्रन्थस्थ पदार्थ का नवीन सांस्कृतिक दृष्टि से विवेचन भी किया जाता है जैसा कि न्यायविनिश्चय, तत्त्वार्थवृत्ति आदि की प्रस्तावनाओं में किया गया है।

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला प्राकृत संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी आदि कई भाषाओं में प्रकाशित होती है। इसका उद्देश्य ज्ञान की अप्रकाशित सामग्री को प्रकाश में लाना है। यह ग्रन्थमाला सेठ शान्तिप्रसाद जी की स्व० मातेश्वरी श्री मूर्तिदेवी के पुण्य स्मरणार्थ चालू की गई है और उनकी भव्य भावना के अनुसार इसमें महाबंध आदि सिद्धान्त ग्रन्थों के साथ ही साथ विविध विषयक जैन साहित्य का सम्पादन-प्रकाशन चालू है।

प्रस्तुत ग्रन्थ रत्नमञ्जूषा सूत्र पद्धति से लिखा गया जैन छन्दग्रन्थ है। मूल सूत्रकार के जैन होने में, टीकाकार का जैन होना तथा जैन छन्दोऽनुशासन के कर्त्ता आ० हेमचन्द्र द्वारा इसके छन्दों का ज्ञात होना आदि प्रमाण सम्पादक वेलणकर सा० ने उपस्थित किए हैं। टीकाकार का नाम भी अज्ञात है। चूँकि उसने मंगलश्लोक में जैन तीर्थंकर महावीर का स्मरण किया है और उदाहरण श्लोकों में प्रायः सर्वत्र जैन परम्परा को ही प्रथित किया है अतः उसका जैन होना असन्दिग्ध है। ग्रन्थ के ज्ञातव्य मुद्दों पर विद्वान् सम्पादक ने प्रस्तावना में पर्याप्त प्रकाश डाला है।

प्राध्यापक वेलणकर छन्दःशास्त्र के अधिकारी विद्वान् हैं। इन्होंने इसका विशेष अध्ययन और अनुसन्धान किया है। आपके विशिष्ट अध्ययन और सतत अध्यवसाय का साक्षी तो आप के द्वारा सम्पादित 'जिनरत्नकोश' है। छन्दःशास्त्र पर आपने कई संशोधनात्मक निबन्ध भी लिखे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का समीक्षापूर्ण सर्वाङ्ग सम्पादन आपके सूक्ष्म परिशीलन का साक्षात् निदर्शन है। आप के सहयोग से ग्रन्थमाला ऐसे ही अनेक ग्रन्थरत्नों से समृद्ध बनेगी।

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक सेठ शान्तिप्रसाद जी तथा अध्यक्षा सौ० रमा रानी जी की सांस्कृतिप्रियता उदार दृष्टि और ज्ञानानुराग इस संस्था के जीवन हैं। इस भद्र दम्पति से अनेक ऐसे ही सांस्कृतिक कार्यों की आशा है।

ज्ञानपीठ के प्राकृत विभाग के सम्पादक डा० हीरालाल जी ने इस ग्रन्थ को इस रूप में सम्पादित कराने की योजना कराई है। इसके प्रूफ देखने में श्री पं० महादेव जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने सहयोग दिया है। प्रस्तावना का हिन्दी अनुवाद श्री बालचन्द्र जी शास्त्री एम. ए. ने किया है। अतः ये सब धन्यवाद के पात्र हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
सुगन्धदशमी, भाद्रपद शुक्ला १०
वीर सं० २४७५

—महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य
ग्रन्थमाला सम्पादक

प्रस्तावना

रत्नमंजूषा संस्कृत छन्दशास्त्र विषयक ग्रन्थ है। ग्रन्थकार एक प्राचीन जैन है जिनके नाम और जीवन-विषयक घटनाओं से हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं। पिंगल के छन्दशास्त्र के समान यह सूत्रों में लिखा गया है और इसमें आठ अध्याय हैं। विषय प्रतिपादन में भी पिंगल का सादृश्य तथा प्रभाव प्रतीत होता है। पिंगल से सादृश्य तथा उसका प्रभाव प्रतीत होते हुए भी रत्नमंजूषा का कुछ रूप में पिंगल से मौलिक भेद भी हैं। जैन होने के नाते ग्रन्थकार वैदिक छन्दों का व्यवहार नहीं करता। सूत्रों से ग्रन्थकार के जैन होने का तो कोई चिह्न नहीं मिलता; लेकिन टीकाकार के जैन होने से और इस बात को देखकर भी कि इसके कुछ छन्द हेमचन्द्राचार्य को ही ज्ञात है, पिंगल तथा केदार को नहीं, ग्रन्थकार के जैन होने की बात प्रायः निश्चित हो जाती है। टीकाकार का नाम भी हमें अज्ञात है। टीकाकार जैन था इसका प्रमाण हमें प्रस्तावना-श्लोक से मिलता है। प्रायः सभी उदाहरण टीकाकार के ही रचे हुए प्रतीत होते हैं। कुल ८५ उदाहरणों में से ४० उदाहरण मुद्रा द्वारा अपने अपने छन्द का परिचय देते हैं। मुद्रा द्वारा छन्द का परिचय कराना इस बात का प्रतीक है कि उदाहरण इसी मौके के लिए रचे गये थे। यह भी संभव है कि ग्रन्थकार ने दूसरों से भी उदाहरण लिये हों विशेषतः उस दशा में जहाँ कि श्लोक छन्द को सूचित नहीं करते यद्यपि वहाँ भी यह बात सम्भव थी। २.४, पर ग्रन्थकार ने शाकुन्तल (१.३३) से उद्धरण लेकर दिया है, और ६.२७ पर भास के प्रतिज्ञा यौगन्धरायण (२.३) से। अन्य उद्धरण भी निम्नलिखित हो सकते हैं : ३.७ (कर्ण वैकर्तन्‌); ४.२०.२ (······व्रताः सेनापतिः); ५.५ (सेनापतिपुत्री); ५.२०; ५.२८; ५.३४ (केतुमान); ६.१२ ; ६.२१ ; ५.६.२९ (जहाँ वररुचि दौवारिक द्वारा नन्द को अपने आने की सूचना देता है); ७.२१ ; ७.३२ (स्कन्द की स्तुति) तथा ७.३३ निम्नलिखित श्लोक स्पष्ट रूप से जैन धर्म का उल्लेख करते हैं :—२.५, १५ ; ३.१६ ; ४.९ ; ५.८, १७, २९, ३० ; ६.३, ६, १०, १३, १४ ; ७.२६, २७, ३०। इनमें से नवाँ श्लोक अपने छन्द का उल्लेख नहीं करता और सम्भवतः छन्द के उदाहरणार्थ इसकी रचना नहीं हुई दिखती। करीब २५ उदाहरण सामुद्रिक का उल्लेख करते हैं और प्रायः सब में मुद्रा द्वारा ही छन्द प्रतीत कराया है। सम्भवतः ये उदाहरण स्वयं टीकाकार के रचे हुए प्रतीत होते हैं।

टीकाकार तीन-चार बार ग्रन्थकार का उल्लेख करता है लेकिन उन ग्रन्थकार के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं करता। ४.१, पर उनको केवल आचार्य नाम से ही याद करता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है रत्नमञ्जूषा विषयक प्रतिपादन में साधरण रूप से पिंगल का अनुसरण करता है और विषय को (वैदिक छन्दों को छोड़कर) ८ अध्यायों में बाँटता है। प्रथम अध्याय में ग्रन्थकार ग्रन्थ में प्रयुक्त चिह्नों तथा पारिभाषिक शब्दों का निर्देश करता है। द्वितीय अध्याय में आर्या (१.१३) गीति (१४) आर्यागीति (१५) गलित्तक (१६) तथा उपचित्रक वर्ग के अर्धसम वृत्तों का लक्षण-प्रतिपादन करता है। तृतीय अध्याय में वैतालीय १.९ और मात्रासमक वर्ग के मात्रा-छन्दों का। अन्त में पिंगल के (४.४८-५२) समान गीत्य आर्या, विशिखा और कुलिक का। लेकिन अध्याय का अन्त मात्रा वृत्त—नृत्यगीत तथा नटकरण—से करता है। इन अन्त के दो छन्दों का लक्षण-निर्देश, जहाँ तक मुझे मालूम है, हेमचन्द्राचार्य ही करते हैं, अन्य कोई नहीं। चतुर्थ अध्याय में ग्रन्थकार विषम वर्ण के—उद्गता (१-६) दामावारा या पदचतुरुर्ध्व (७-१२) तथा अनुष्टुभवक्त्र (११-२०) का लक्षण-प्रतिपादन

तथा उदाहरण देता है। (अध्याय चतुर्थ की प्रस्तावना देखें)। अध्याय पाँच से सात तक समस्त वर्णवृत्तों के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये हैं। पिंगल के समान ग्रन्थकार गायत्री वर्ग से—जिसमें चार चरण तथा प्रत्येक चरण में ६ शब्द होते हैं—शुरू करता है लेकिन निम्नतर वर्ग के उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा तथा सुप्रतिष्ठा को बिलकुल छोड़ देता है। (अध्याय प्रथम की प्रस्तावना तथा २०-२४ सूत्रों को देखें)। पाँचवें अध्याय के प्रारम्भ में ग्रन्थकार वर्णवृत्तों को तीन वर्गों—समान, प्रमान तथा वितान—में बाँटता है। पाँच से सात तक प्रतिपादित छन्द वितान के भीतर आते हैं। पाँचवें अध्याय में सूत्र १-१२ की टिप्पणी में जैसा मैंने कहा है कि २१ वर्णवृत्तों के इस प्रकार के विभाजन में ग्रन्थकार अकेला ही है। पिंगल तथा अन्य छन्दशास्त्र के रचयिता इस तीन तरह के विभाजन अनुष्टुभ वर्ग में ही सीमित करते हैं। अनुष्टुभ वर्ग के छन्द के प्रतिपादन के समय उनका निर्देश करता है। और विषम वृत्तों के प्रारम्भ में—जिसमें अनुष्टुभ वक्त्र का अन्तर्भाव होता है—हेमचन्द्राचार्य भी इसके अपवाद नहीं। ग्रन्थकार ८५ वर्णवृत्तों का लक्षण निर्देश करता है। इसको गायत्री से उत्कृति तक २१ वर्ग में बाँटा गया है। ८५ में से करीब २१ से पिंगल और केदार दोनों अपरिचित हैं। ग्रन्थकार का यह विभाग हेमचन्द्राचार्य से पुरस्कृत जैन परम्परा को ही ज्ञात है। पिंगल के करीब १६ छन्द भी छोड़ दिये गये हैं।

लेकिन दोनों में सबसे महत्त्वपूर्ण भेद चिह्न विषयक हैं। पिंगल ने वर्णवृत्त में छन्दबोध के लिये त्रिक का प्रयोग किया है। पिंगल में आठ व्यंजनों के आठ चिह्न हैं। ग्रन्थकार त्रिक को स्वीकार करते हैं लेकिन चिह्न बिलकुल बदल दिये हैं। ग्रन्थकार ने चिह्नों की दो रीतियाँ स्वर रीति और व्यंजन रीति प्रस्तुत की हैं। इसके अतिरिक्त ग्रन्थकार ने आठ त्रिक में दो द्विक अपनी ओर से मिलाये हैं, (त्रिक तीन वर्णों का पुंज है तथा द्विक दो वर्णों का)। इस प्रकार अन्तस्थ य र ल व इनके चिह्न स्वरूप प्रस्तुत किए गये हैं। ग्रन्थकार न और म का प्रयोग क्रमशः दीर्घ और लघु वर्णों के लिये करता है, जिससे हमें पिंगल के नगण और मगण की याद आती है। इनका प्रयोग करते समय ग्रन्थकार के मन में पिंगल के नगण-मगण स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं। पिंगल के सदृश ग्रन्थकार भी मात्रागणों में चतुर्मात्रा वर्ग का ही उल्लेख करता है। मात्रावृत्तों के लक्षण-प्रतिपादन के ही लिये चतुर्मात्रा वर्ग का प्रयोग होता है। संस्कृत में मात्रावृत्तों की संख्या बहुत थोड़ी है और इनमें चतुर्मात्रा-वर्ग ही लिये गये हैं, (द्वितीय अध्याय की प्रस्तावना देखें)। चतुर्मात्रा-वर्ग लघु और दीर्घ वर्णों के विभिन्न प्रयोगों के आधार पर पाँच प्रकार का है। तीन प्रकार के तो त्रिक में आ जाते हैं। त्रिक के चिह्न भी इनके लिए प्रयुक्त होते हैं। शेष दो में से एक तो द्विक है, दूसरे का कोई विशेष चिन्ह नहीं है। ग्रन्थकार इसको दो चिह्नों द्वारा प्रस्तुत करता है।

भाष्यसहित रत्नमञ्जूषा के इस संस्करण को तैयार करने में ए और बी नामक दो पाण्डुलिपियों (गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लायब्रेरी, मैसूर) का उपयोग किया गया है। ए का नं० ८७१ तथा बी का १०२५ है। दोनों कन्नड़ में भोज पत्र पर हुई लिखी हैं। प्रत्येक में २५ पत्र हैं; जिनका आकार क्रमशः १०$\frac{१}{४}$ × २ और १३$\frac{३}{४}$ × १$\frac{१}{२}$ इंच है। दोनों के पृष्ठ क्रमशः ९ और ७ पंक्ति के हैं और प्रत्येक लाइन में क्रमशः करीब ५२ और ७१ वर्ण हैं। दोनों पाण्डुलिपियाँ अपूर्ण हैं। ए. में आठवें अध्याय का अधिकांश भाग है लेकिन बी. आठवें के १५ सूत्र तक ही है। ए. भाष्य में सत्तरह (१७) सूत्र के बाद नहीं मिलता लेकिन अन्त में ११ श्लोक ऐसे मिलते हैं जो लेखक द्वारा उद्धृत-से प्रतीत होते हैं। इनमें स्वभावतः ६ प्रत्यय पाये जाते हैं। ११ वें श्लोक में खण्डमेरु प्रस्तार के रचयिता पुन्नागचन्द्र का उल्लेख है। यह ग्रन्थ वर्णवृत्त विषयक है।

दोनों पाण्डुलिपियों में बहुधा लघु वर्णों के लिये दीर्घ वर्णों का प्रयोग किया गया है। विरले वक्त

दीर्घ वर्णों से लिये। दोनों ही में लघु वर्णों का भी प्रयोग समान रूप से है। इस त्रुटि की ओर मैंने समय समय पर ध्यान दिलाया है, साथ ही सही वर्ण भी दे दिये हैं। जहाँ जहाँ वर्ण छूटे हैं वहाँ वर्ण के पीछे मैंने प्लस (+) चिह्न देकर उसको ब्रेकेट में रख दिया है।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी तथा डा० हीरालाल जैन का मैं बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस दुर्लभ ग्रन्थ के सम्पादन का अवसर दिया।

१०/२ शास्त्री हॉल
बम्बई ७
२ जून, १९४९।

ह. दा. वेलणकर

प्रकाशन-व्यय

३९०) छपाई १० फार्म	१७५) व्यवस्था
१५०) कागज	१००) चित्रकवर
२००) जिल्द	२००) भेंट आलोचना
१६०) सम्पादन	१००) विज्ञापन
१२५) प्रूफ शोधन	४००) कमीशन
	२०००)

१००० प्रति छपी

मूल्य २)

रत्नमञ्जूषा with भाष्य

INTRODUCTION

Ratnamañjūṣā is a work on Sanskrit metres written by an old Jain author, whose name and personal history are wholly unknown. The work consists of Sūtras and contains 8 Adhyayas like Piṅgala's Chandas Śāstra. The treatment also shows great similarity with and influence of Piṅgala's work. Yet in some respects Ratnamañjūṣā materially differs from Pigṅala. The author, being a Jain, naturally drops the Vedic metres. As a matter of fact, there is no indication in the Sūtras themselves about the religion of their author. Yet the fact that their commentator is a Jain and that some of the metres defined in them are known only to the great Jain author Hemacandra, but not to Piṅgla or Kedāra, makes it almost certain that the author of the Sūtras was very likely a Jain. The name of the commentator is also unknown. He was a Jain as is clear from the introductory stanza. Most of the illustrations seem to have been composed by the commentator himself. About 40 out of a total of 85 illustrations contain the name of the metre artificially introduced by way of Mudrā. This is a pretty clear indication of their being composed for the occasion itself. It is however possible that he may have quoted from other sources, especially in those cases where the stanzas do not contain the name of the metre even when it was possible to introduec it. At 2. 4, he has quoted from the Śākuntala (I. 33) and at 6. 27 from Bhāsa's Pratijñāyaugandharāyaṇa (II 3). The other possible quotations may be 3. 7 (Karṇa Vaikartana); 4. 20. 2 (devair vṛtah senāpatiḥ); 5. 5 (senāpatiputrī); 5. 20; 5. 28; 5. 34 (ketumān); 6. 12; 6. 21; 6. 29 (Vararuci announcing himself to Nanda through the doorkeeper); 7. 22; 7. 32 (praise of Skanda) and 7. 33. The following stanzas contains a clear reference to Jain religion :— 2. 5, 15; 3. 16; 4. 9; 5. 8, 17, 29, 30; 6. 3, 6, 10, 13, 14; 7. 26, 27, 30. In 9 of these, the name of the metre is not introduced and they were probably not composed for the purpose of mere illustration. About 25 of the illustrations contain references to the

Sāmudrika and in most of these the name of the metre is introduced artificially, suggesting that they were probably composed by the commentator himself.

The commentator has an occasion to refer to the author of the text on three or four occasians, but in no place does he mention his name. On 4.1, he calls him an *ācārya* merely.

As said above Ratnamañjūṣā broadly follows the plan of Piṅgala and distributes the same material (except Vedic metres) over 8 Adhyayas as follows: In the first Adhyaya, he explains the symbols and technical terms employed by him in this book. In the second, he defines the Āryā (1-13) the Gīti (14) the Āryā Gīti (15), the Galitaka (16) and then the Upacitraka group of the Ardhasama Varṇa Vṛttas. He devotes the third Adhyaya to the Vaitālīya (1-9) and the Mātrāsamaka groups of the Mātrā Vṛttas (10-17), giving at the end Gītyāryā, Viśikhā and Cūlikā (18-20) just like Piṅgala (4.48-52), but concluding the chapter with Nṛtyagati and Naṭacaraṇa, both of which are pure Mātrā Vṛttas. These last two are defined, so far as I know, only by the great Jain writer Hemacandra and not by any one else. In the fourth Adhyaya the three groups of the Viṣama Varṇa Vṛttas, namely the Udgatā (1-6), the Dāmāvārā or the Padacaturūrdhva (7-12) and the Anuṣṭubh Vaktra (11-20) groups are defined and illustrated. See the introductory note to Adhyaya IV. In Adhyayas five to seven, all the Varṇa Vṛttas are defined and illustrated. Like Piṅgala, our author begins with the Gāyatrī class whose metres contain 6 letters in each of their four lines, neglecting the metres of the lower classes i.e, Uktā, Atyuktā, Madhyā, Pratiṣṭhā and Supratiṣṭhā altogether. See note on Adhyaya 1, Sūtras 20-24. At the beginning of the fifth Adhyaya, our author broadly divides all these Varṇa Vṛttas under three heads namely Samāna, Pramāṇa and Vitāna. The metres actually defined in Adhyayas 5 to 7 come under the third head i.e., Vitāna. As explained in my note on 5. 1-12, our author stands alone in thus dividing the Varṇa Vṛttas of *all* the 21 classes. Piṅgala, and following him, all the other writers, including the Jaina Hemacandra, restrict this threefold division to metres of the Anuṣṭubh class alone and mention it on the first occasion when they treat of the metres of the Anuṣṭubh class i.e., at the commencement of the Viṣama Vṛttas which include the Anuṣṭubh Vaktra group. Our author defines about 85

Varṇa Vṛttas belonging to the 21 classes from Gāyatrī to Utkṛti. Out of these, not less than 21 are unknown to Piṅgala and Kedāra, but known only to the Jain tradition represented by Hemacandra. On the other hand, about 16 metres defined by Piṅgala are dropped in the Ratnamañjūṣā.

But the most important point of difference between Piṅgala and Ratnamañjūṣā is the use of symbols. Piṅgala has devised 8 Trikas (groups of three letters) for the purpose of scanning a metrical line of the Varṇa Vṛttas. He has given them eight symbols consisting of eight consonants. Our author has retained the Trikas but changed their symbols completely. He has put forth a double system of symbols, one consisting of consonants and another of vowels alone. He has also added 4 Dvikas (groups of two letters) to the 8 Trikas, giving them the symbols consisting of the 4 semivowels *ya, ra, la,* and *va.* He employs the symbols *na*, and *ma*, (i. e. consonants *n* and *m*) for short and long letters respectively; but here he has clearly the *nagaṇa* and the *magaṇa* of Piṅgla in his mind. Like Piṅgla, he too mentions only the Caturmātra group among the Mātrā Gaṇas. This group alone is employed in defining the Mātrā Vṛttas. Really speaking, the number of Mātrā Vṛttas in Sanskrit is very restricted and in them only the Caturmātra groups are prescribed as explained in my introductory note to the second Adhyaya. The Caturmātra group is of five kinds according as short and long letters in different order are employed in them Three of them are already included in the Trikas whose symbols are also used for them. Of the remaining two, one is a Dvika, while the other has no special symbol to represent it and is prescribed with the help of two symbols by our author.

In preparing the edition of the Ratnamañjūṣā with the Bhāṣya two manuscripts called A and B have been used. Both of them are from the Government Oriental Library, Mysore. The first i.e., A is No. 871, while the second i.e., B is No. 1025. Both are written in the Kannada characters and on palm leaves. A as well as B, both 25 folios each the size of which is respsctively $10\frac{1}{4} \times 2$ and $13\frac{3}{4} \times 1\frac{1}{2}$ inches. Their pagesr espectively contain 9 and 7 lines with about 52 and 71 letters in a line. Both the mss. are incomplete. A contains the greater part of the eighth chapter while B contains it only upto the end of the 15th Sūtra of it. A breaks off in the Bhāṣya on the 17th Sūtra but gives at the end some 11

stanzas which look like a quotation from some other work written out by the scribe himself. They naturally bear on some of the 6 Pratyayas. In st. 11 an author called Punnāgacandra is mentioned as the author of the Khaṇḍameru Prastāra of the Varṇa Vṛttas.

Both the manuscripts agree in frequently writing short letters for long and rarely also long letters for short ones. The mistakes are generally obvious. Yet I have indicated all of them as they are, in the following edition putting (within brackets) the correct letter or letters, immediately after the wrong ones. When a letter is dropped, it is indicated by means of a plus + sign placed behind the letter which is then put within the brackets.

I feel greatly obliged to the Bhāratīya Jñānapīṭha, Kashi and Dr. H. L. Jain of Nagpur for giving me an oppertunity of editing this rare work on Sanskrit metres.

10/2 Shastri Hall, Bombay 7,
2nd June, 1949.

H. D. Velankar.

नमः सिद्धेभ्यः ।

सभाष्या रत्नमञ्जूषा

[प्रथमोऽध्यायः]

यो भूतभव्यभवदर्थयथार्थवेदी देवासुरेन्द्रमुकुटार्चितपादपद्मः ।
विद्यानदीप्रभवपर्वत एक एव तं क्षीणकल्मषगणं प्रणमामि वीरम् ॥

मायाका ॥१॥

माया का इत्यस्य सर्वगुरुत्रिकस्य आकारः संज्ञा भवति ककारो वा 'स्वरोऽन्त्यस्तदन्तस्य व्यञ्जनं च' इति वचनात् । 'सूचिमुखी पा' (५-७) इत्याकारस्य, 'भद्रविराड् यीरे कीरे' (२-२०) इति ककारस्य । अत्रैव माया इति गुरुद्वयस्य यकारः संज्ञा भवति, व्यञ्जनं च तदन्तस्येति वचनादेव । यीपृनीति । पुनश्च अत्रैव मा इति गुर्वक्षरस्य मकारः संज्ञा भवति, व्यञ्जनं च तदन्तस्येति वचनादेव । भ इति अक्षरे एकस्मिन्नप्याद्यन्तवद्भावात् । संयोगे नपिमिति । अत्राह– नन्वाकारादयस्तेषामेवाक्षराणां संज्ञा, यथा वृद्धिरादैच् इति वृद्धिसंज्ञा तेषामेवाक्षराणाम् इति; न; तद्रूपसंज्ञाकरणे प्रयोजनाभावात् तन्मात्राणां यान्यत्र तेषु त्रिकेष्वक्षराण्युपदिष्टा (+नि) तेषां संज्ञाकरणानि प्रयोजनमिति तन्मात्राणां सर्वासां संज्ञास्ताः प्रत्यवगन्तव्याः । अथवा 'शालिनी माल्ये दि' (+इ) त्यत्र (५-३५) छेदवचनं ज्ञापकमन्येषाम् इति तन्मात्राणां संज्ञा इति । यदि तेषामेव संज्ञा माया का इति छेदवचनमनर्थकं भवति, तस्मात्तन्मा[1]त्रासंज्ञाकरणमेव ॥

नरौ चे ॥२॥

नरौ चे इत्यादिलघुत्रिकस्य एकारः संज्ञा भवति चकारो वा । 'तनुमध्या ह्यै' (५-५) इत्येकारः । 'शिखण्डि (+नी) चा' (५-८) इति चकारः । अत्रैव नरौ इत्यादिलघुद्विकस्य रकारः संज्ञा भवति । 'भद्रविराड् यीरे कीरे' (२-२०) इति । पुनश्चात्रैव न इति लघ्वक्षरस्य नकारः संज्ञा । संयोगे नपिमिति (१-११) ॥

---

१ तन्मात्राकरणमेव A.

लालितौ ॥३॥

लालिताविति मध्यलघुत्रिकस्य औकारः संज्ञा तकारो वा । 'चपला गर्धात्तौ' (२-७७) । पुनश्चात्रैव लावि (ली) त्यन्तलघुद्विकस्य लकारः संज्ञा । 'उपचित्रकं पि(पी)वौ लुपे' इति (२-१७) ॥

विवपी ॥४॥

विवपी इत्यन्तगुरुत्रिकस्य ईकारः संज्ञा पकारो वा । पुनश्चात्रैव विव इति लघुद्विकस्य वकारः संज्ञा । 'उपचित्रं(त्र+कं) पि(पी)वौ लुपे (२. १७) इति ॥

शाशाश ॥५॥

शाशाश इत्यन्तलघुत्रिकस्य अकारः संज्ञा शकारो वा । 'इन्दवज्रा शरे' (५-२७) इति ॥

षिषेषु ॥६॥

षिषेष्विति मध्यगुरुत्रिकस्य उकारः संज्ञा षकारो वा । 'उपचित्रकं पि(पी)वौ लुपे' (२-१७) इति ॥

सस्वसृ ॥७॥

सस्वसृ इत्यादिगुरुत्रिकस्य ऋकारः संज्ञा सकारो वा । 'हरिणीप्लुता वृक्षा हृसाविति' (२-२३) ॥

हहहि ॥८॥

हहहि इति सर्वलघुत्रिकस्य इकारः संज्ञा हकारो वा न(+इह)हि इति ॥

अष्टौ स्वरास्त्रिकाणामष्टौ च व्यञ्जनानि संज्ञाः स्युः ।
द्विकसंज्ञास्तु यरलवा गुरुलघुसंज्ञौ मनौ ज्ञेयौ ॥

स्वरोऽन्त्यस्तदन्तस्य ॥९॥

यस्य त्रिकस्य यः स्वरोऽन्त्यः स तस्य[1] संज्ञा भवति । तथा चैवोदाहृतम् । अन्त्यग्रहणात् आदिमध्यस्थाः स्वरा अक्षराणां द्विकानां वा संज्ञा न भवति । तस्मात् आकारादिः[2] त्रिकस्य प्रत्यायको भवति ॥

व्यञ्जनं च ॥१०॥

यस्मिन्नक्षरे यद् व्यञ्जनं वर्तते तच्च तदक्षरान्त्य(न्त)स्य त्रिकस्य द्विकस्य अक्षरस्य वा प्रत्यायकं भवति, तथा चैवोदाहृतम् । अन्त्यग्रहणं वर्तते वा न वा ? किं जात(तम्) । यदि वर्तते; अनन्त्यत्वात् द्विकस्य अक्षरस्य ग्रहणं न संभवति । अथ निवृत्तम् ; 'इन्द्रवज्रा शरे' (५-२५) इत्यत्रायं शकारः त्रिकस्य आद्यो मध्यमोऽन्त्यो वा इति न ज्ञायते इति । भवतु वर्तते । ननु च उक्तमनन्त्यत्वात् द्विकस्य अक्षरस्य वा ग्रहणं न संभवति इति । नैष दोषः । वचनाद्भवति । कथम् ? यदाद्यं मध्यमं वा व्यञ्जनं गृहीत्वा संज्ञाभावेन संव्यवहरति । 'संयोगे नपिम्' (१-११) 'यीपृनि' (१-२६) (+इ) ति, तज्ज्ञापयति अनन्त्यमपि व्यञ्जनं क्वचित् तदन्तस्य संज्ञा भवतीति । अथवा भवतु निवृत्तमिति । ननु चोक्तं इन्द्रवज्रा शरे इति शकारः त्रिकस्याद्यो मध्यमोऽन्त्यो वा इति न ज्ञायते इति । तत्र को दोषः ? यद्याद्यः गुरोरेकस्य ग्रहणं भवति । अथ मध्यमो गुरुद्वयस्य । नैष दोषः । यद्येको गुरुद्वयं च इष्टमभविष्यत् असन्देहकम् अकारं वा यकारं

---

१ तदन्तस्य B. २ आकारादेः A.

वा अकरिष्यत् । तदकरणाद् वयं प्रतिजानीमहे अन्त्य एव नाचो (+न) मध्यम इति । 'अथवा व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणम्' इति लक्षणसद्भावादन्त्य एव इति व्याख्यास्यामः ॥

संयोगे नपि म् ॥११॥

द्वयोर्बहूनां वा समागमः संयोगः, तस्मिन् परतः पूर्वो नपि लघुरपि म् भवति गुरुर्भवतीत्यर्थः ॥

यत्नस्सुमहान् कार्यः संसारमहार्णवान्तगमनाय ।
इन्द्रियगजप्रवारणपरेण विदुषा सदा भाव्यम् ॥

अपिशब्दात् संयोगे परतः कदाचिल्लघुरेव भवति । तत्कथम् ?

धनं प्रदानेन श्रुतेन कर्णौ सत्येन वाक्यं प्रशमेन कायम् ।
शौचेन वृत्तं दिवसं हितेन नियोज्य यो जीवति जीवितः सः ॥

अत्र श्रु इत्येतस्मिन् परतः पूर्वो नकारो लघुरेव भवति । अनेनैव अपिशब्देन अन्येऽपि विकल्पाः कल्प्याः । एको गुरुः द्वौ लघु(घू) भवतः इत्येवमादयः । पादेत्यत्र (?) द्वौ मौ चत्वारो नो भवन्ति ततो नित्याख्यां लभन्ते ॥

अन्ते च ॥१२॥

नपि म् इत्यनुवर्तते । पादान्ते यो लघुः स गुरुर्भवति ॥

नार्याद्ययुक्पादे ॥१३॥

आर्यायाः अयुक्पादयोरन्ते वर्तमानो लघुर्गुरुर्न भवति, लघुरेव भवति । एतयोरपि सूत्रयोः स एव दृष्टान्तः ॥

संख्या ददादिः ॥१४॥

एकादिकायाः संख्याया ददा इत्येवमादीनि संज्ञा भवन्ति ॥

पूरणे ण् ॥१५॥

पूरणं तावतिथमित्यर्थः । तत्कथं दूण् ॥

न वा ॥१६॥

णकारेण विना दादीनि वा संख्यापूरणवाचीनि भवन्ति । तत्कथं 'शालिनि(नी) माल्ये दि' (५-३५) ॥

पादः ॥१७॥

वृत्तस्य चतुर्थोऽशो(शः) पाद इति ज्ञेयः ॥

छेदः ॥१८॥

श्रुतिसुभगस्थितिः ॥

पदे से ॥१९॥

सन्धिविकारे त्यगिमध्ये ॥

पादे गायत्री दूअक्षरा ॥२०॥

यस्य छन्दसः पादे षडक्षराणि भवन्ति सा गायत्री नाम । उत्तरत्रोदाहरिष्यामः । असंहिताकरणम-सन्देहार्थम् ॥

दघ (द) वृद्धाः उष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुभः ॥२१॥

ददवृद्धाः एकैकाधिका इत्यर्थः । येषां छन्दसां गायत्रीपादात् एकैकाक्षराधिकपादाः ॥

जगतीशक्वर्यष्टिधृतयोऽतेश्च ॥२२॥

जगती अतिजगती शक्वरी अतिशक्वरी अष्टिः अत्यष्टिः धृतिः अतिधृतिः इत्येताः संज्ञा भवन्ति । कथमिदं विज्ञायते जगती अतिजगती शक्वरी अतिशक्वरी अष्टिः अत्यष्टिः धृतिः अतिधृतिः एव(वं) क्रमो भवति न पुनः जगतीशक्वर्यष्टिधृतिअतिजगती(+अति)शक्वरीअत्यष्टिअतिधृति इति ? उच्यते । धृतिरित्यधिकृत्य 'कुसुमितलतावेल्लिता मालिनये' (७-२) इति वचनात् । कथं तेन एतदुपलभ्यते । यदि पश्चादुक्तः क्रमः स्यात् धृतिः पञ्चदशाक्षरा स्यात् । धृतौ 'मालिनये' इति अष्टादशाक्षर[1]विन्यासलक्ष(+ण) वचनमयुक्तं स्यात् । ततोऽवगम्यते पूर्वोक्त[2] एव क्रम इति ॥

कृतिः ॥२३॥

कृतिरिति अतिधृतिपादात् एकाक्षराधिकपादस्य कृतिर्नाम भवति ॥

प्राविसमभ्युदश्च ॥२४॥

कृतिपादात् एकैकाक्षराधिकपादाः प्रकृतिः आकृतिः विकृतिः संकृतिः अभिकृतिः उत्कृतिः इत्येवं संज्ञाः भवन्ति ॥

दि(दी) नो ग् ॥२५॥

दि(दी) इति चतस्र इत्यर्थः । न इति मात्रा इत्यर्थः । चतसृणां मात्राणां ग् इत्येषा संज्ञा भवति ॥

यीपृनि ॥२६॥

माया, विवपी, षिपेषु, ससवस्, नदहदि, इत्येवं गुरुभूताभिः पृथग्भूताभिश्च मात्राभिः पञ्चविधा गो भवन्ति ॥

इति रत्नमञ्जूषायां छन्दोविचित्यां भाष्यतः प्रथमोऽध्यायः ॥

१–क्षरस्य विन्यास–A. २ पूर्वोऽत्र A.

द्वितीयोऽध्यायः

अर्धे ॥१॥

अर्धे इत्यधिकृत्य । इत उत्तरं यल्लक्षणमभिधास्यामः तदर्धे इति वेदितव्यम् । तत्कथम् ? आर्या दगोऽर्धं च । अर्धे इत्युपस्थितं भवति । आ कुतोऽयमधिकारः । आ अध्यायपरिसमाप्तेः ॥

आर्या दगोऽर्धं च ॥२॥

आर्या नाम सा जातिर्भवति यस्या अर्धे दगः गर्धं च भवति । कथम् ?

नवभिर्द्वारैरशुचिस्राविण्यां विविधदुःखकारिण्याम् ।
नार्यां नार्यो रमते नार्यो रमते स्वनार्याणाम् ॥

जुगु ॥३॥

तस्या आर्यायाः पूर्वार्धापरार्धयोः उकार(रः) मध्यगुरुत्रिकस्समगण एव भवति न विषमगणः ॥

दूण् ॥४॥

षष्ठो गणः उकारः मध्यगुरुत्रिकः एव भवति नान्यः ॥

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः ।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥

नि चेद् दाण् पदादिः ॥५॥

षष्ठो गणो यदि (+न)हहहि भवति तदा द्वितीयो लघुः पदादिः भवति ॥

संसारेऽसारत्वं परीक्ष्य बहुधापि विपुलमतिभिरिह ।
मुनिचरिते पथ्यात्मा नेयः परमं पदमिच्छद्भिः ॥

पाञ्चयोगिकोऽयमुदाहरणश्लोकः ॥

दण् दण् ॥६॥

नि जे(चे)दित्यनुवर्तते, पदादिरिति च । यदि सतम्या (मो) गणः सर्वलघुर्भवति तदा प्रथमलघुः पदादिर्भवति । दण् दण् नि जे(चे)दाण् पदादिः' इत्येव द्वयपूर्वस्य (इत्येतद् द्वयं पूर्वस्य) एव लक्षणं परार्धे 'दुण् नेव दूण्' इति वचनात् ॥

परेपि अयं विशेषोऽभिधास्यते ।

परार्धे दुण् ॥७॥

यदि परार्धे पञ्चमो गणः सर्वलघुर्भवति तदापि प्रथमलघु(घुः) पादादिर्भवति ॥

नेव दूण् ॥८॥

अपरार्धे षष्ठो गणः एक एव लघुर्भवति ॥

द्विगयुक्पादा पथ्या ॥९॥

द्वि(द्वी)ति त्रयः गिति गणाः। यस्याः आर्यायाः अयुक्पादः त्रिगणो भवति सा पथ्या नाम ॥९॥

विपुलान्या ॥१०॥

यस्या आर्याया अयुक्पादः त्रिगणो न भवति, भवति सा विपुला नाम ॥

विपुलागमधौतमतीनामपि पूर्वकृतकर्मवश्यानाम् ।
न विधेयतां समुपयान्ति प्रबला इन्द्रियरथाश्वाः ॥

चपला गर्धात् ते नौ ॥११॥

यस्या आर्याया आदितोऽर्धगणात् परतः 'लालितौ, नरोचे, न, लालितौ,' इत्येतत् लक्षणं भवति भवति चपला नाम ॥

रोगा बहुप्रकाराः सदा तुदन्ति चपलायते मूर्तिः ।
मरणं च भावि नित्यं किमत्र रम्यं जगति शिष्टम् ॥

मुखे तत्पूर्वा ॥१२॥

पूर्वार्धे इत्यर्थः । यदि पूर्वार्धे एतल्लक्षणं भवति, भवति मुखचपला नाम । तद्यथा—

प्रस्वेदबिन्दुचित्रं विमुक्तबन्धनसुमालिवृतकेशम्[1] ।
शंसति मुखं तरुण्याः वृत्तामपि कन्दुकक्रीडाम् ॥

जघने च ॥१३॥

जघन इत्यपरार्धे इत्यर्थः । यद्यपि अपरार्धे एव एतल्लक्षणं भवति जघनचपला नाम ॥

कर्णनिहित(तः) प्रियङ्गुः क्रिमिरागैः पदि च पिण्डितो वर्णः ।
वेणीकृताश्च केशा विभान्ति बालातपे नार्यः ॥

पूर्णश्चेद् दूण् गीतिः ॥१४॥

परार्धे 'नेव द(दू)ण्' इत्युक्तं सा तथा अभूत्वा यदि चतुर्मात्रा भवन्ति, भवति गीतिर्नाम ॥

देवेन्द्रोऽपि न दुःखत्यागी तिर्यङ्मनुष्यनरकेषु ।
का तत्र जन्तुषु कथा सतताहितविविधदुःखभावेषु ॥

यदा पूर्णाव(र्णस्त)दा 'दूण्' 'नि जे(चे)द्वाण् पदादि' रित्येतद्द्वयमुपतिष्ठते । ततः षष्ठः षिषेषु इति वा नदहहि इति वा भवति । यदा नहहहि भवति तदा द्वितीयः पदादिर्भवति ॥

द(दू)ण् चार्यागीतिः ॥१५॥

यद्यष्टमो गणः पूर्णो भवति, भवति आर्यागीतिर्नाम ॥

जगति जरारुङ्मरणाद्भीता जिनपुङ्गवं श्रयध्वं मनुजाः ।
तद्गुणविशेषवशगा आर्या गीतिभिरभिष्टुवन्ति यमनिशम् ॥

१—बन्धनकुसुमालिवृत्त AB. २–A Drops these three words;

गलितकं प्रतिपादं दुगर्धं च ॥१६॥

चतुर्षु पादेषु पञ्चगणा गणार्धं च भवति, भवति गलितकं नाम ॥

न स्मरति किं त्वदीरितशरभासुरतानाम् । अटवीषु चोग(ग्र)केसरिशरभा सुरतानाम् ।
अथवान्तकस्य सुष्ट्या निशातदन्तस्य । प्राता बोधाय शरन्निशा तदन्तस्य ॥

इत उत्तरं आ अध्यायपरिसमाप्तेः अर्धसमानि भवन्ति । पूर्वार्धे परार्धे [1]तुल्यविन्यासत्वात् ॥

उपचित्रकं पि(पी)वौ लुपे ॥१७॥

यद्यर्धे विवपी विवपी विव लालितौ, ललि षिषेषु षिषेषु नरौचे इत्येतल्लक्षणं भवति, भवत्युपचित्रकं नाम ॥

उपचित्रकमक्षयसद्भनैः काञ्चनविद्रुमरत्नवरैश्च ।
कुलमाशु दरिद्रतया प्लुतं दैन्यमुपैति दिवेव शशाङ्कः ॥

द्रुतमध्या लुपे हुपे ॥१८॥

यदि लुपे हुपे (+इ) ति लक्षणं भवति, भवति द्रुतमध्या नाम ॥

भोगवती सुदती द्रुतमध्या । वलिपलितैर्विकृतेति जरेयम् ।
एत तपोवनमाशु मनुष्याः । विगतजरं पदमाप्तुमुदात्तम् ॥

वेगवती नुपे लुपे ॥१९॥

यदि नुपे लुपे इति लक्षणं भवति, भवति वेगवती नाम ॥

बलिभिः पलितैश्च विकीर्णा शीघ्रमुपैति जरा मरणाय ।
सितफेनतरङ्गतताशा सन्ततवेगवतीह नदीव ॥

भद्रविराड् यि(यी)रे कि(की)रे ॥२०॥

यदि यि(यी)रे कि(की)रे इति लक्षणं भवति, भवति भद्रविराड् नाम ॥

केयूरमुखैर्विभूषितस्रक् तेजो भद्रविराण्णरेड् शु(सु)रेड् वा ।
भूत्वापि स एव याति पापात् चाण्डालश्वशृगालसूकरत्वम् ॥

केतुमती नुसे लुसे ॥२१॥

यदि नुसे लुसे इति लक्षणं भवति, भवति केतुमती नाम ॥

यमपार्थिवप्रहितरोगः केतुमतीव वर्ष्म किल हन्ति ।
अभितो हिताहितमनुष्याः एत तपोदमप्रवरगुप्ताः ॥

आख्यानिका शरे परे ॥२२॥

यदि शरे षरे इति लक्षणं भवति, भवति आख्यानिका नाम ।

यदाहमैश्वर्यसमन्वितोऽहं ज्ञानान्वितोऽहं प्रियदर्शनोऽहम् ।
इति प्रमोदी मदमेति मर्त्यः तत्र त्वपश्यन्विपरीतभावम् ।

१–पदार्थतुल्य B.

हरिणीप्लुता वृसा(सौ) हसा(सौ) ॥२३॥

यदि वृसा(सौ) हसा(सौ) इति लक्षणं भवति, भवति हरिणीप्लुता नाम ।

कृतकर्मविपाकवशान्नृणां निपतति क्वचिदेव सुखं कियत् ।
कमलालययोषिदपि क्वचित् न च चिरं रमते हरिणीप्लुता ॥

मालभारिणी वृते पृते ॥२४॥

यदि वृते पृते इति लक्षणं भवति, भवति मालभारिणी नाम ।

घनमासगृहे तडित्प्रदीपे पवनैर्गन्धवहैः कृतानुयात्रम् ।
विनिमीलितसूर्यचन्द्रनेत्रं खक्षितीवाम्बरमम्बुभारखिन्नम् ॥

अपरवक्त्रं विषौ हुषौ ॥२५॥

यदि विषौ हुषौ इति लक्षणं भवति, भवति अपरवक्त्रं नाम ।

स्वशिशुमपरवक्त्रदर्शनं विगतदयोतिविलालराक्षसः ।
कथमिव पिशिताशिनां नृणां भवति दया मृगमत्स्यपक्षिषु ॥

पुष्पिताग्रं हिते हुन्ते ॥२६॥

यदि हिते हुन्ते इति लक्षणं भवति, भवति पुष्पिताग्रं नाम ।

भ्रमरपरभृतोपगीतजुष्टं किसलयभूषितचारुपुष्पिताग्रम् ।
उपवनमिव दृष्टपुष्टशोभं कुलमुपयाति समृद्धमाशु नाशम् ॥

यमवती तुत्नौ रुत्रे ॥२७॥

यदि तुत्नौ रुत्रे इति लक्षणं भवति, भवति यमवती नाम ।

मानवा अवश्यभाविनाविमौ कथं जरायमावतीव दुःसहौ समीक्ष्य ।
द्वेषमोहरागरोषपीडितास्तपो वनं प्रयातुमत्र तत् सहन्ते ॥

शिखा वा(वो) दोप् वो दोप् ॥२८॥

यदि विव त्रयोदशकृत्वः सकृद्विवपि(पी) पुनश्चतुर्दश कृत्वो विव सकृद्विवपि(पी) लक्षणं भवति, भवति शिखा नाम ।

नरपतिविरहितनरजगदिव सुरपतिविरहितमिव च सुरजगत् ।
बलपतिविरहितबलमिव च कुलमिव च कुलवरवरपुरुषविरहितम् ।
रजनिकरविरहितगगनमिव सलिलरुहविरहितमिव न च सरः ।
भवति हि कुलबलविभवविरहितकरेण विरहितनिरवधिकमिव जननम् ॥

इति रत्नमञ्जूषिकायां छन्दोविचित्यां भाष्यतो द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

१—यथा A.

तृतीयोऽध्यायः

पादे ॥१॥

पादे इत्यधिकारः। इत उत्तरं यल्लक्षणमभिधास्यामः तत्पादे इति वेदितव्यम्। यथा 'वैतालीयमन्ते लौ।' पादे इत्युपस्थितं भवति ॥

वैतालीयमन्ते लौ ॥२॥

यदि चतुर्षु पादेषु अन्ते अवसाने ललि लालिताविति लक्षणं भवति, भवति वैतालीयं नाम ॥

आपातलिका ले ॥३॥

यदि ले इति लक्षणं स्यात्, भवति आपातलिका नाम ॥

सूक्ष्माङ्गुलिरन्धनकेशी सारसहंसकलस्वनवाणी।
आपातलिका विधिरेषा नृपतिकुलेषु विशेषमुपैति ॥

औपच्छन्दसिकं ते ॥४॥

यदि ते इति लक्षणं स्यात्, भवति औपच्छन्दसिकं नाम ॥

पादैः श्लिष्टैर्घनाङ्गुलि(ली)कैः सुस्निग्धोपचितैः सुगूढगुल्फैः।
आताम्रनखैः समुन्नताग्रैः औपच्छन्दसिकं वनं लभन्ते ॥

आह—वैतालीयापातलिकयोः पादान्तस्य अष्टमात्रस्य औपच्छन्दसिकस्य दशमात्रस्य च विन्यासक्रमोऽभिहितः। शेषः कीदृग्विध इत्यत्रोच्यते—

शेषे(ऽ)युजोद्वन्द्वं दूनः ॥५॥

औपच्छन्दसिकान्तानामयुक्पादयोरभिहितलक्षणशेषे षण्मात्रा भवन्ति मिश्रितामिश्रिताः। तत्र मिश्रिता अव(वि)शिष्टलघवः द्वन्द्वं भवन्ति मिथुनीभूताः। युग्माः समा इत्यर्थः। कथं दादीदू इति न पुनर्दिदो(दु) इति। तथा च एव उदाहृतम् ॥

युज्योदूनः (युजोदूनः+व्हि न) ॥६॥

युक्पादशेषे तेनैव क्रमेण अष्टमात्रा भवन्ति। विहीने'(व्हिने)ति प्रतिषेधः। युक्पादशेषे विव इइहि इइहि इति न्यासो न भवति ॥

---

१ आवातलिका A. २—न विहीनेति B.

दिण(णो) मू प्राच्यवृत्तिः ॥७॥

यदि तृतीयमात्रापरो युक्पादशेषे गुरुर्भवति परं च यदि वैतालीयलक्षणं भवति, भवति प्राच्यवृत्तिर्नाम ॥

विपुलाक्षिभुजः स्तनान्तरः सन्निकृष्टदशनान्तराङ्गुलिः ।
कर्णो वैकर्तनो नरः प्राच्यवृत्तिरवनीश्वरो भवति ॥

दणोऽयुज्यो(जो)रुदीच्यवृत्तिः ॥८॥

मित्यनुवर्तते । यदि अयुक्पादशेषे प्रथममात्रापरो गुरुर्भवति एवं च यदि भवति वैतालीयलक्षणं, भवति उदीच्यवृत्तिर्नाम ॥

विशालजघना महोदराः हरिणाक्षाः कलमन्दभाषिणः ।
नरा दुरितसन्निभाननाः सदशास्त्रि(शाः स्त्री) भिरुदीच्यवृत्तिभिः ॥

उभयं प्रवृत्तकम् ॥९॥

अयुक्पादशेषे प्रथममात्रापरः युक्पादशेषे तृतीयमात्रापरश्च गुरुर्भवति परं वैतालीयलक्षणं भवति, भवति प्रवृत्तकं नाम ॥

प्रलम्बहनुशङ्कपिण्डितम् भुग्नवक्त्रकपितुल्यनासिकम् ।
मुखं विषमदन्तलोचनं पापकर्मणि सदा प्रवृत्तकम् ॥

मात्रासमकं दि(दी) गः ॥१०॥

पादे इत्यधिकारोऽनुवर्तते । यदि चत्वारो गो भवन्ति, भवति मात्रासमकं नाम । उत्तरत्रोदाहरिष्यामः॥

न दणु ॥११॥

तस्य मात्रासमकस्य प्रथमगणः षिपेषु न भवति ॥

दिणि (णी) ॥१२॥

तस्य मात्रासमकस्य तृतीयगणो विवपी एव भवति ।

मात्रा सुसुतान्वियुतान्[1] केचित् मात्रासमकान्वियुतान् केचित् ।
मर्त्या घ्नन्ति हि विशिते नीचाः नित्यं यान्ति हि नरकं पापाः ॥

उपचित्रा यृ ॥१३॥

यदि तृतीयगणो मावा इति ससवस इति वा भवति शेषं च मात्रासमकलक्षणं भवति, भवति उपचित्रा नाम ॥

---

१ सुसुताद्वियुतान् B.

चित्तानामुपचित्रार्थानां तेषां शास्त्रादीन्युपजीवन् ।
क्लेशं सततं प्राप्नोत्य (प्य ?)बुधो नाद्यं तान्यपि याति तथापि ।।

वानवासिका ष्णि ।।१४।।

यदि तृतीयगणः षिषेषु इति वा नहहहि वा भवति, भवति वानवासिका नाम ।।

विश्लोको दाण् ष्णि ।।१५।।

यदि द्वितीयगणः षिषेषु इति वा नहहहि इति भवति, भवति विश्लोको नाम ।।

कुज्ञानमोहिताग्धि(न्धी)भूतः क्षीणाऽमदि(दी)नविश्लोकानाम् ।
सक्तस्तु ना यदैषां चाप्ते लोके मतिं न धत्ते धर्मे ।।

चित्रा पुनि च दिण् ।।१६।।

यदि द्वितीयगणः षिषेपु इति वा नहहहि इति वा तृतीयगणश्च विवपी इति (+वा) षिषेषु इति वा नहहहि इति वा भवति, भवति चित्रा नाम ।।

कुज्ञानदष्टितमोनिहन्त्री नानाप्रमाणनयवरचित्रा ।
वाणी जिनवरकथिता शुद्धामा(भा)त्यम्बरेऽर्करुचिर(रि)व चित्रा ।।

पादकुलकं मिश्रम् ।।१७।।

यानि मात्रासमकादीनां निर्दिष्टानि लक्षणानि तेषु द्वे वा त्रीणि वा चत्वारि वा यदि एकस्मिन् श्लोके दृश्यन्ते स पादकुलकसंज्ञो भवति ।।

पल्लवकुसुमपलाशविचित्रं वृक्षं बहुपुष्पफलाकुलकम् ।
दृष्ट्वा पुनरपि विरहितशोभं नैश्वर्यमदमिह च कुरुतार्याः ।।

गोत्यार्या नां नामिति ।।१८।।

मात्राणामित्यर्थः । चतुर्गणपादा विरहितगुर्वक्षरा गोत्यार्या नाम ।

दिविजयतिरिति च मनुजयतिरिति च । सुरमुकुटमहितदिविजयतिरिति च ।
कुकवलधृतिमतिधनरहित इति च । यम इति न च परिहरति च हरति च।।

विशिखार्धे मः ।।१९।।

यस्य श्लोकस्य चतुर्गणाः पादस्या (दाः अ) र्धे गुरूणि अर्धे लघूनि भवन्ति, भवति विशिखा नाम ।।

सिंहस्कन्धः पीनौ बाहू वंशश्यामः कम्बुग्रीवः ।
परवृषभगजसदृशगतिरमित-वपुरमरगणसदृशनर इह जयति ।।

चूलिका शिखार्धम् ॥२०॥

शिखा वा(वो) दोब् वो दौबित्युक्तम्। एतच्छिखाया अर्धस्य लक्षणं यद्धि तेनैव एकः श्लोको भवति, भवति चूलिका नाम ॥

वरहयगजरथनरपतिजनगृह-सुतमणिकनकरजतमुखरम्।
न च समनुभवति यमपुरुषसमनु-चरविरहितमनु चरति सुचरितम् ॥

नृत्यगतिर्दु ॥२१॥

ग इत्यनुवर्तते। यस्या जाते(तेः) पादशः पञ्च गणा भवन्ति, भवति सा नृत्यगतिर्नाम ॥

मर्त्येषु कदाचित्तिर्यक्षु कदाचित् स्वर्गेषु कदाचिच्छ्वभ्रेषु कदाचित्।
कृत्वा किल जननं श्रुत्वा बहुरूपं नृत्यगतिं जीवो वर्तयति च नित्यम् ॥

मेवान्त्यः तस्यापि ॥२२॥

नृत्यगतिजातेरन्त्यो गणो मेव गुरुरेव भवति। तथा चैवोदाहृतम् ॥

दिण्च ॥२३॥

तृतीयगणोपि मेव भवति ॥

छेदः ॥२४॥

तस्मिन् तृतीयगणे छेदो भवति ॥

नटचरणं दि ॥२५॥

अत्रापि ग इत्येव। यस्या जातेः पादशः त्रयो गणा भवन्ति, भवति नटचरणं नाम। उत्तरत्र वक्ष्यमाणेनापि लक्षणेन युक्तम् ॥

नटचरणादपि चपला चलतीयं युवतेति।
युवतायां मदमार्याः कुरुत न मो(मोः) कुरुत तपः ॥

मेवान्त्यः ॥२६॥

तस्या नटचरणजातेः अन्त्यो गणो मेव भवति ॥

दाण्च ॥२७॥

द्वितीयगणोपि मेव भवति ॥

छेदः ॥२८॥

तस्या नटचरणजातेः पादशः द्वितीयगणे छेदो भवति ॥

इति रत्नमञ्जूषायां छन्दोविचित्यां भाष्यतः तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

उद्गतं पुनु, निषौ सिरि (री) पुपुम् ॥१॥

यदि प्रथमे पादे पुनु; द्वितीये निषौ; तृतीये सिरि (री) चतुर्थे पुपुम् इति न्यासो भवति; भवति उद्गतं नाम ॥

नर उद्गतं कुलमुपेत्य विपुलमतिसत्यसंयुतः ।
कश्चिदसुखमतुलं लभते कृतकर्मपाकविकृतैः ततो हितः ॥

आह—इह पाद इत्यनुवर्तते वा न वा । किं जातः (तम्) । यदि वर्तते पुनुनिषौ सिरि (री) पुपुम् इति एतत्पादस्य एव लक्षणम् । चतुर्गुणः श्लोकः स्यात् । अप्यनिवृत्तकं दिण् तिमि इति अनिर्देशः स्यात् । भवति, अनुवर्तते इति । ननु च उक्तं पादस्यैव लक्षणं भवति चतुर्गुणः चतुर्गुणः श्लोकः स्यात् इति । दिण् तिमिति तृतीयपादस्य विन्यासक्रमाभिधानात्सर्वस्य, इति विज्ञायते । पादग्रहणं प्रत्येकं परिसमाप्यते पादे पुनु, पादे निषौ, पादेसिरि (री) पादे पुपुमिति । अथवा यस्य आचार्यस्य शीलं लक्ष्येत नियतेषु द्वाभ्यामक्षराभ्याम् एकस्य पादस्य विन्यासलक्षणं ब्रवीति इति 'उपचित्रकं पिवौ लुपे इति' (२-२७) तत्रापि द्वे द्वे अक्षरे एकैकस्य पादस्य विन्यासलक्षणमिति ग्राह्यम् ॥

दिण् तिमि(मी) सौरभकम् ॥२॥

यदि तृतीयपादे तिमि(मी) इति न्यासो भवति शेषेषु पादेषु उद्गतवद्भवति, भवति सौरभकं नाम ॥

परिमण्डलाक्षिवदनश्च कुटिलतनुदीर्घनासिकः ।
प्रस्थितं च यदि सौरभकं गणमृत्युरेष हि भवेत् चमूपतिः ॥

हिपि (पी) ललिता ॥३॥

यदि तृतीयपादे हिपी इति न्यासो भवति शेषेषु पादेषु उद्गतवद्भवति भवति ललितां नाम ॥

ललितानि सुस्मितपटूनि मधुरवचनानि योषिताम् ।
जननमरणजलधौ शरणं नहि तैः सु (तेषु) रज्यत हि भो हितार्थिनः ॥

उपस्थितप्रचुपितं क्चौषे, बृभ्रे, विनि (नी) हिह्रि (ह्री) म् ॥४॥

यदि प्रथमे पादे क्चौषे, द्वितीये बृभ्रे, तृतीये विनि (नी), तुरीये ह्रि(ह्री) म् इति विन्यासो भवति, भवति उपस्थितप्रचुपितं नाम ॥

जात्यश्वा न जयजवेन (XXXXX) समुपस्थितजरकस्तु दण्डहस्तः ।
स किल चकितचकितं व्रजति च पतति च चलनस्खलनाग्रम् ॥

वर्धमानं द्विर्दिण् ॥५॥

यदि तृतीयपादो द्विगुणितो भवति अन्ये उपस्थितप्रचुपितवद् भवन्ति, (भवति) वर्धमानं नाम ॥

दृष्ट्वेन्दुं प्रथमप्रवर्धमानमुदितम् । पुनरेनमहरहः क्षयं व्रजन्तम् ।
कुलबलधनकनकैः न च किल वरमतयः । कुरुत मदमिह कुरुत चात्महितानि ॥

शुद्धविराडार्षभं यीनौ ॥६॥

यदि तृतीयपादो(दे)यीनाविति न्यासो भवति अन्यत्रोपस्थितप्रचुपितवद्भवति शुद्धविराडार्षभं नाम ॥

रोगश्वापदहिंस्रमृत्युसन्ततसेव्यां प्रविगाह्य किल भवाटवीं भ्रमन्ति ।
ये शुद्धविराजमार्षभं प्रवचनमुरुनयरुचिरं न विदन्ति ॥

दामावारा ददादिदि(दी)नि ॥७॥

आद्ये पादे सकृत् नि, द्वितीये द्विर्नि, तृतीये त्रिर्नि, चतुर्थे चतुर्नि कृत्वा । नि इति नहइहि इत्यर्थः, एवं भवति, भवति दामावारा नाम ॥

नि च्छेदः ॥८॥

तस्या दामावारायाः उक्तासु मात्रासु पादशश्चतुर्मात्रावसाने छेदो भवति ॥

नेन्ते ॥९॥

तस्या एव दामावारायाः चतुर्षु पादान्तेषु नेन नरौचे इति न्यासो भवति । कथम्—

बहुविधनयवादा मुनिपतिवदनजठररामा ।
प्रणयति शिवपदमभिनुतनरदेवा सलिलमुविलसदचलजलनिधिसमधीरा ॥

पादपरिवृत्तेर्नामाक्षरपरिवृत्तिः ॥१०॥

येन प्रकारेण चत्वारोऽपि पादाः परिवृत्ता भवन्ति तेनैव प्रकारेण तान्यपि चत्वारि नामाक्षराणि परिवृत्तानि संज्ञा भवन्ति । यथा—दामावारा । दामारावा । दावामारा । दावारामा । दारामावा । दारावामा । मादावारा । मादारावा ।मावादारा। मावारादा। मारावादा । मारादावा । वामादारा। वामारादा । वादामारा । वादारामा। वारादामा । वारामादा। रामादावा । रादामावा । रामावादा । रादावामा । रावामादा । रावादामा । एवं चतुर्विंशति वृत्तानि भवन्ति । स परिवृत्तपादः उदाहरणश्लोको भवति। तच्छ्लोकपादान्तैरक्षरैरपि वृत्तनामानि लक्ष्याणि ॥

अनुष्टुप् ॥११॥

अनुष्टुप् इत्यधिकारः आ अध्यायपरिसमाप्तेः ॥

वक्त्रम् ॥१२॥

अनुष्टुभि छन्दसि वक्त्रसंज्ञा भवति । तस्य लक्षणमुत्तरत्रैव वक्ष्यते ॥

नादौ सि ॥१३॥

तस्य वक्त्रस्य आदौ पादशः सत्वस्त इइहि इति द्वौ त्रिकौ न भवतः ॥

दि(दी)ण् ए ॥१४॥

तस्यैव वक्त्रस्य पादशः चतुर्थाक्षरात्परतः नरौचे इत्येवायं त्रिको भवति ।

सिंहमत्स्यशशाङ्काभं क्रौञ्चबर्हिणहंसाक्षम् ।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषं मह्वीं कामयते वक्त्रम् ॥

पथ्या युजोः ष(ष्) ॥१५॥

यदि चतुर्थाक्षरात्परतः युक्पादयोः षिषेषु भवति, भवति पथ्या नाम ॥

अनुबद्धकटी कन्या चक्रवाकनिकूजिता ।
अपि क्रीडा नृणां पथ्या प्रजागलसुखावहा ॥

विपरीताऽयुजोः ॥१६॥

यदि तथैव अयुजोः षिषेषु भवति, भवति विपरीतपथ्या नाम ।

ऊर्मिलोलशिरोरुहा कन्यका मदिराक्षी या ।
बाहुव्यथितपयोधरा पथ्या हि विपरीता सा ॥

चपला इ ॥१७॥

यदि अयुजोः इइहि भवति, भवति चपला नाम ॥

रूक्षपिण्डाग्रदशना वक्त्रनिर्मांसनासाग्रा ।
कन्यका वातचपला काङ्क्षते व्यस्तसौभाग्यम् ॥

विपुला युजोर्द(द्) न् ॥१८॥

यदि युजोः सप्तमो लघुर्भवति, स्याद्विपुला नाम ॥

पृथुपीनमृदुश्रोणी विपुलाक्षी हंसस्वना ।
असितायतकेशान्ता वृत्ता कन्या पुत्रार्थिना ॥

सर्वत्र सैतवस्य ॥१९॥

यदि सर्वपादेषु सप्तमस्याक्षरस्य लघुत्वं भवति सैतवस्याचार्यस्य विपुला नाम ॥

मण्डलं शिवमाननं धर्मशीलमनाविलम् ।
स्त्रि (स्त्री) मुखेष्वनपत्यता दुर्भगं तु महामुखम् ॥

सति मकरशा मध्ये ॥२०॥

विशेषविशिष्टत्वात् दनिति निवृत्तम् । दिण् (ण) इति प्रकृतमेवानुवर्तते । यदि चतुर्थाक्षरात्परतः सस्वस, शाशाश, लालितौ, हहहि इति एते त्रिका भवन्ति विपुलाशब्दात् पुकारं व्युदस्य मकरशामध्ये भूत्वा यथाक्रमं संज्ञा भवन्ति । यदि सस्वस भवति, विपु (म) ला नाम स्यात् ॥

बहुमस्वं चारुमुखं चतुरस्रं घातमुखम् ।
विषमो दुःकालहितं कृपणात्म्यं ह्रस्वमुखम् ॥

यदि शाशाश भवति, स्यात् विकला नाम ।

स्निग्धच्छविं पद्मप्रभां ह्यन्विच्छदा दैत्यारिणा ।
किं चाद्य मे देवैः सह सेव्यैर्वृतः सेनापतिः ॥

यदि लालितौ भवति, स्यात् विरला नाम ।

भग्नतुण्डं केकराक्षं नासावक्त्रं यत्करालम् ।
प्रश्लि(श्लि)ष्टोष्ठं(ष्ठं) पीनगण्डं क्रूरं नार्यंस (स्त) न्मुखं स्यात् ॥

यदि हहहि भवति , भवति विशाला नाम ॥

स्फारितास्यं यदि मुखं शूकतीक्ष्णाग्रदशनम् ।
श्येनतुल्ये च नयने वाहिनी वारिचपला ॥

इति रत्नमञ्जूषायां छन्दोविचित्यां भाष्यतः चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

समानं लः ॥१॥

पाद इति अनुवर्तते । गायत्र्यादिषु उत्कृतिपर्यवसानेषु छन्दःसु पादशः आपादपरिसमाप्तेः यदि लालि इति न्यासो भवति, भवति समानं नाम ॥

पाणिपादमस्तकाननाक्षिकुक्षिपृष्ठपार्श्वदन्तकर्णनासिकादि ।
तन्नृणां समानमेव येषु यस्तु चास्ति तत् स्वपूर्वपुण्यपाक एव ॥

एतत् जगत्यां छन्दसि । तथा अन्येष्वपि छन्दःसु ।

प्रमाणं रः ॥२॥

यदि नरौ इति न्यासो भवति, प्रमाणं नाम स्यात् ॥

मतिद्युतिप्रभावसत्त्ववाग्वपुः बलाढ्यताकुलोद्भवत्वकान्तयः ।
तप(पः)प्रमाणलक्षिता क्षितौ नृणां ततः तपः कुरुध्वमुत्तमा नराः ॥

वितानमन्यत् ॥३॥

एताभ्यां समानप्रमाणाभ्यामुत्तरत्र वक्ष्यमाणेभ्यः तनुमध्यादिभुजङ्गविजृम्भितपर्यवसानेभ्यश्च यदन्यत्समवृत्त यस्मिन् छन्दसि भवति तत् वितानं नाम । एतच्च मात्रासमकं (क) नृत्यगतिनटचरणानि (० चरणादीनि नामानि) भजते ॥

अभ्रसंकटविनिःसृततपनः तत्क्षणं भवति निष्कृतजलदः ।
नादयन्निव महीं दश च दिशा (शः) दुर्दिनं महदुपोहति मघवा ॥

गायत्री ॥४॥

इतःप्रभृति गायत्र्यादिछन्दःसु कतिपयानि वृत्तानि संज्ञालक्षणाभ्यां निर्दिश्यन्ते ॥

तनुमध्या त्यौ ॥५॥

यदि पादशः त्यौ इति न्यासो भवति, भवति तन्मध्या नाम ॥

सेनापतिपुत्री शोकात्पतिता सा ।
आसीत्तनुमध्या भूयस्तनुमध्या ॥

मुकुलिता हे ॥६॥

यदि हे इति न्यासो भवति, स्यात् मुकुलिता नाम ॥

विमुकुलितायाः कुसुमलतायाः ।
क्षणगतशोभा भवति वरश्रीः ॥

सूचिमुखी पाः (पा) ॥७॥

यदि पा इति न्यासो भवति, सूचिमुखी नाम स्यात् ॥

जगति प्राधान्यं भवति प्रागेव ।
किमुत श्रेयोऽन्यत् तपसा (सो) हे मर्त्याः ॥

शिखण्डिनी चा ॥८॥

यदि चा इति न्यासो भवति, भवति शिखण्डिनी नाम ॥

सुरेन्द्रैः पूज्येभ्यः नरेन्द्रैरर्च्येभ्यः ।
मुनीन्द्रैरीड्येभ्यः नमः सर्वज्ञेभ्यः ॥

उष्णिक् ॥९॥ कुमारललिता षि(षी)म् ॥१०॥

यदि षि(षी)म् इति न्यासो भवति, भवति कुमारललिता नाम ॥

अलं खलु स रामः कुमारललितेन ।
इतीव पलितान्नृन् जरा प्रतियुनक्ति ॥

वज्रकं शि(शी)म् ॥११॥

यदि शि(शी)मिति न्यासो भवति, भवति वज्रकं नाम ॥

वज्रं तृणमपि स्यात् काले समुपयाते ।
वज्रं तृणमपि स्यात् काले समुपयाते ॥

अनुष्टुभ् ॥१२॥ माणवकक्रीडितकं मिमि(मीमी) ॥१३॥

यदि मिमि(मीमी)ति न्यासो भवति, स्यान्माणवकक्रीडितकं नाम ॥

सर्वजगत्ख्यातयशाः स्यान्मनुजो ज्ञानयुतः ।
तत्परतो नैव हितं माणवकक्रीडितकम् ॥

चित्रपदं मि(मी)ने ॥१४॥

यदि मि(मी)ने इति न्यासो भवति, भवति चित्रपदं नाम ॥

अप्रियमप्यवनीन्द्राः सुप्रियवत्प्रवदन्ति ।
को हि नरो भुवि विन्द्यात् चित्रपदं नृपवृत्तम् ॥

बृहती ॥१५॥ भुजगशिशुसृता विना ॥१६॥

यदि विना इति न्यासो भवति, भवति भुजगशिशुसृता नाम ॥

जगति सह जरारोगैः वि(चि ?)रमतिरमते यो ना ।
स्वपिति किल स निर्भीतिः भुजगशिशुसृतागारे ॥

तरङ्गवती ता(तौ)नौ ॥१७॥

यदि ता(तौ)नाविति न्यासो भवति, भवति तरङ्गवती नाम ॥

या तरङ्गबुद्बुदोपमा तां मनुष्यतां सुदुर्लभाम् ।
प्राप्य मोदते नराधमो नोत्तमो जिनेन्द्रशास्त्रवित् ॥

पङ्क्तिः ॥१८॥ शुद्धविराट् मसौ ॥१९॥

यदि मसाविति लक्षणं भवति, भवति शुद्धविराट् नाम ॥

भूत्वा शुद्धविराड् नरेऽतः वर्चस्कक्रिमितामुपैति यत् ।
एतेनैव नते(ये)न दर्शिता संसाररमणीयता बुध ॥

पणवो मसा ॥२०॥

यदि मसा इति न्यासो भवति, भवति पणवो नाम ॥

मृदङ्गी मृदुललितालापा संयुक्ता वरयुवतिः पत्या ।
बभ्राजे निजशिशुना यान्ति(न्ती) खे तारेव पणवमध्या सा ॥

उपस्थिता शुनौ ॥२१॥

यदि शुनाविति न्यासो भवति, भवति उपस्थिता नाम ।

व्याघ्रीव जरा समुपस्थिता रोगैश्च वृकैरे(रि)व भक्ष(क्ष्य)से ।
मृत्युश्च मृगेन्द्र इवेक्षते अद्यापि हितं न करिष्यसे ॥

रुक्मवती लेले ॥२२॥

यदि लेले इति न्यासो भवति, भवति रुक्मवती नाम ॥

पुष्पितनानानोकहवन्तं प्राप्य वनान्तं प्रावृषि कश्चित् ।
उन्नतपीनश्रोणिपयोदां योषितमिष्टां नाथ उवाच ॥

मत्ता माहे दिच्छेदः ॥२३॥

यदि माहे इति न्यासो भवति भवति चतुर्थाक्षरैश्छेदः च, मत्ता नाम ॥

नारीणां ना नलिनमुखीनां मत्ताक्षीणां मधुरवचोभिः ।
बद्धो बद्धो भ्रमवशगो यः बद्धो बद्धः स च यमपाशैः ॥

त्रिष्टुभ् ॥२४॥ इन्द्रवज्रा शरे ॥२५॥

यदि शरे इति न्यासो भवति, भवति इन्द्रवज्रा नाम ॥

प्रक्षीणपूर्वार्जितपुण्यराशिं न त्रायते वज्रधरोऽपि मर्त्यम् ।
अक्षीणपूर्वार्जितपुण्यराशिः नैवेन्द्रवज्राभिहतोऽपि नश्येत् ॥

उपेन्द्रवज्रा षरे ॥२६॥

यदि षरे इति न्यासो भवति, भवति उपेन्द्रवज्रा नाम ॥

उपेन्द्रवज्रायुधपाण्डवेषु स्थितेष्वपि ख्यातपराक्रमेषु ।
पुराभिमन्युं [1]युधि चेज्जयेर्ना जयद्रथो रक्षति कं कमन्यः ॥

इन्द्रमाला द्वयम् ॥२७॥

यदीन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रे सदैकस्मिन् श्लोके भवतः, भवति इन्द्रमाला नाम ॥

अम्लानमाला(त्या ?) सुरसुन्दरीभिः वृत्तेन्द्रमाला च्यवते दिवश्चेत् ।
कालेन नार्या इव मुक्तमाला मर्त्या वयं किं जलबुद्बुदाभाः ॥

दोधकं लुपे ॥२८॥

यदि लुपे इति न्यासो भवति, भवति दोधकं नाम ॥

कालविधाविव नाटकवृत्तं दर्शयितुं भुवि सर्वजनेभ्यः ।
अम्बररङ्गमसौ गिरिकूटात् सूर्यनटः प्रविशन्निव भाति ॥

रथोद्धता तिलौ ॥२९॥

यदि तिलाविति न्यासो भवति, भवति रथोद्धता नाम ॥

सर्वभावविधितत्त्वदर्शिनः सर्वसत्त्वहिततत्त्वदेशिनः ।
अर्हतोऽहमघराशिनाशिनः संस्तुवे त्रिभुवनप्रकाशिनः ॥

---

१ यदि B.

स्वागता तिले ॥३०॥

यदि तिले इति न्यासो भवति, भवति स्वागता नाम ।

धर्मतीर्थकरमुख्य नमस्ते नाथ नष्टभवबीज नमस्ते ।
बुद्ध सर्वजनवृत्त नमस्ते हेमनामजिनमान नमस्ते ॥

श्येनी तुलौ ॥३१॥

यदि तुलौ इति न्यासो भवति, भवति श्येनी नाम ॥

श्येनगृध्रवायसादिभोजनं मूत्रपित्तशोणितादिभाजनम् ।
सन्ततं शरीरमग्रनाशनं भूषणेन मोहयत्यबीर्जनः ॥

सुभद्रिका विषौ ॥३२॥

यदि विषाविति न्यासो भवति, भवति सुभद्रिका नाम ।

इह भवति हि धार्मिकस्य नुः सुरवरनरपूजनीयता ।
पुनरपि च सुभद्रिका गति(तिः) परममपि पदं तथा गतः ॥

सारिणी रितौ ॥३३॥

यदि रिताविति न्यासो भवति, भवति सारिणी नाम ॥

तथा मकरकेतुमान् केतुमान् रथैस्स शतशोऽभितः शोभितः ।
रणे च रथसङ्कुलः सङ्कुलः युगान्तजलदारुणो दारुणः ॥

वृन्ता विहा ॥३४॥

यदि विहा इति न्यासो भवति, भवति वृन्ता नाम ।

यमपुरुषकरहतं यावत् पवनहत इव फली वृक्षः ।
न निपतति तव शरीरं त्वं कुरु कुरु हितमहितं त्यक्त्वा ॥

शालिनी माल्ये दि(दी) ॥३५॥

यदि माल्ये इति न्यासो भवति, भवति शालिनी नाम । चतुर्थाक्षरैः छेदश्च भवति ॥

एतद्रूपं कामुक त्वं ब्रवीषे । एषा नारी शालिनी मत्प्रियेति ॥
भक्ष्या या ते सारमेयैः सगृध्रैः । विद्वद्भिर्वित्पूर्णकुम्भायमानम् ॥

वातोर्मिमाला माव्ये ॥३६॥

यदि माव्ये इति न्यासो भवति, भवति वातोर्मिमाला नाम । दि अनुवर्तनात् चतुर्थाक्षरैश्छेदश्च भवति ।

या ह्रस्वा वै विकटा काकजङ्घी संक्षिप्तभ्रूः परुषस्थूलकेशी ।
नाम्नोपेता व्यपदेशाश्रिता वा सा वै कन्या धूतवातोर्मिमाला ॥

भ्रमरविलसिता यहि(ही) ॥३७॥

यदि यहि(ही) इति न्यासो भवति, भवति भ्रमरविलसिता नाम । चतुर्थेऽक्षरे छेदः ॥

कन्यावन्यां समसितदशना पीनश्रोणी मृदुकरचरणा ।
कुर्यात् प्रीतिं पतिभवनरता चित्रेव स्रग् भ्रमरविलसिता ॥

इति रत्नमञ्जूषायां छन्दोविचित्यां भाष्यतः पञ्चमोऽध्यायः ॥

षष्ठोऽध्यायः

जगती ॥१॥

जगत्यधिकारः । किमर्थोऽयमधिकारः ? 'भुजङ्गप्रयातं चः' (+इति) वक्ष्यते । तत्र न ज्ञायते कियन्तश्च इति । जगत्यधिकारात् चत्वार इति गम्यते, तदर्थोऽयमधिकारः ।

भुजङ्गप्रयातं चः ॥२॥

यदि जगत्यां छन्दस्यापादपरिसमाप्तेः नरौचे इति न्यासो भवति, भवति भुजङ्गप्रयातं नाम ॥

न पात्रे प्रदित्सन्नपात्रे प्रदित्सत्(न्) न देयं प्रदित्सन्नदेयं प्रदित्सन् ।
न काले प्रदित्सन्नकाले प्रदित्सन्(न्) न दाता नरः स्यान्नदाता नरः स्यात् ॥

तोटकं पः ॥३॥

यदि विवपी इति न्यासो भवति, भवति तोटकं नाम ॥

स्वदतो(वचो ?)भिरुदारगुणैर्विपुषः मतिमप्यमलां युयुषो जगति ।
सततं वरधर्मकथां जुगुषः प्रणुनूषुरुहं वरतीर्थकृतः ॥

वंशस्था षषौ ॥४॥

यदि षषाविति न्यासो भवति, भवति वंशस्था नाम ॥

द्वयानि भद्रे कुमुदानि मारुतः नितान्तताम्राणि च पाण्डराणि ।
उपोप वावाति यथायथावृतं[1] तथैव बिम्बोष्ठमिदं तवाननम् ॥

इन्द्रवंशा शषौ ॥५॥

यदि शषाविति न्यासो भवति, भवति इन्द्रवंशा नाम ॥

मध्यन्दिनोल्कापतनं च दृश्यते महाण्डजानां पतनं च दृश्यते ।
चन्द्रार्कतारापतनं च दृश्यते नैवान्तकस्यागतिरेव दृश्यते ।

वंशमाला द्वयम् ॥६॥

यदि द्वे अपि लक्षणे सहैव भवतः, भवति वंशमाला नाम ॥

---

१ यथामूर्तं A.

लोकाप(न्प)स्त्रोत्तमभोगसंयुतात्(न्) यो हिंसयात्मानमवापयेन्नरः ।
स पाययित्वातिसुदुःसहं विषं स्ववंशमालापगतिं समापयेत् ॥

समवृत्तेषु विषमार्धसमवृत्तभूताया वंशमालाया वचनं लघुसंप्रतिपत्त्यर्थम् । अयुक्पादप्रथमपादद्वितीय-पादतृतीयपादपूर्वार्धत्रिपदीमध्यमद्विपदीभ्यो वंशस्थ-इन्द्रवंशाभ्यां चतुर्दशविधा वंशमाला तथा इन्द्रमाला च अधसमद्वयं वर्तते । हि—आख्यानिके इति शब्दसंज्ञे (?) ॥

प्रमिताक्षरा पुपि(पी) ॥७॥

यदि पुपि(पी) इति न्यासो भवति, भवति प्रमिताक्षरा नाम ॥

अलकावकीर्णहरिचित्ररसं जनिताक्षिरागमधरामरसम् ।
सखि भाति किञ्चिदुपयुक्तरसं तव वीक्षणेन मुखमभ्यधिकम् ॥

वनमालिनी हुसे ॥८॥

यदि हुसे इति न्यासो भवति, भवति वनमालिनी नाम ॥

अशितपनं च चाञ्जनसुवर्णं[1] जलदहृगर्भकेसरनिभं वा ।
मलयजशालसस्यसदृशं वा वरवनमालिनीव[2] इति श्रीः ॥

द्रुतविलम्बिता हूसौ ॥९॥

यदि हूसाविति न्यासो भवति, भवति द्रुतविलम्बिता नाम ॥

कनकभूषणसंग्रहणोचितः (तो) यदि मणिस्त्रपुणि प्रतिबध्यते ।
न च विरौति न चापि विराजते भवति योजयितुर्वचनीयता ॥

वैश्वदेवी काचे दु ॥१०॥

यदि काचे इति न्यासो भवति दु इति पञ्चमे अक्षरे छेदश्च भवति, वैश्वदेवी नाम भवति ॥

ज्ञानं जन्तूनां नोपरोधप्रवृत्तं क्षय्यं पापानां यन्नवानां च रोधम् ।
बन्धो मोक्षश्चेत् ज्ञायते येन चात्मा सर्वज्ञत्वं च प्राप्यते तत् प्रधानम् ॥

जलोद्धतगतिः पिपि(पीपी) दू ॥११॥

यदि पिपि(पीपी) इति न्यासो भवति षष्ठे अक्षरे[3] छेदश्च भवति, भवति जलोद्धतगतिर्नाम ॥

अपावनकठीनखः कृशपदः बृहत्त्वतनुको गभीरविनयः ।
निपीडितहनुश्रुहुण्डनयनो न नन्दति नरो जलोद्धतगतिः ॥

---

१ चाञ्जनवर्णं B. । २ Both mss reod मालिनि इव ।
३ अक्षरे A. Dropped by B. ।

घ(पु)टा हिके ह(हृ)ण् ॥१२॥

यदि हिके इति न्यासो भवति अष्टमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति घ(पु)टा नाम ॥

उपगतसलिलानां नीलपद्मैः भ्रमरपरभृतानां कण्ठरावैः ।
मदनमदविलासैश्चाङ्गनानां जनयति चतुरत्वं पुष्पमासः ॥

अतिजगती ॥१३॥ प्रहर्षिणो किंतेदी (किन्ते दि) ॥१४॥

यदि किन्ते इति न्यासो भवति तृतीये अक्षरे छेदश्च भवति, भवति प्रहर्षिणी नाम ॥

मानुष्यं च सजलबुद्बुदप्रकाशं मत्वेदं बहुविधवेदनापरीतम् ।
तत्सारं वरमुपलभ्य जैनधर्मं तं प्राप्तुं भव सततं कृतप्रयत्नः ॥

रुचिरा नौवि(वी)नौ दि(दी) ॥१५॥

यदि नौ वि(वी)नाविति न्यासो भवति चतुर्थेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति रुचिरा नाम ॥

यतिस्तुतस्त्रिदशगणेन्द्रपूजितः सदीश्वरो भरतनरेन्द्रसंस्तुतः ।
अवाप्तवान् सुखमतुलं जिनोत्तमो ददातु नो भयरहितोऽक्षयं पदम् ॥

मत्तमयूरं माले ने ॥१६॥

यदि माले ने इति न्यासो भवति दि(दी) इत्यनुवर्तनात् चतुर्थाक्षरे छेदश्च भवति, भवति मत्तमयूरं नाम ॥

कृत्वा धर्मं शर्मसमग्रं नृसुरेषु प्राप्याप्राप्यं कापुरुषाणां मनसापि ।
अन्ते मोक्षं नित्यसुखौख्यं समुपैति तस्माद्धर्मे त्वं भवसक्तो भव सक्तः ॥

शक्वरी ॥१७॥ वसन्ततिलकं मौनि(नी)पे ॥१८॥

यदि मौनि(नी)पे इति न्यासो भवति, भवति वसन्ततिलकं नाम ॥

श्रीमण्डपेषु मणिरत्नविभूषितेषु सिंहासनेषु वरचामरवृन्दमध्ये ।
सामन्तवृतनयनानि भृशं दधाना भान्तीन्द्रभानुशशिवच्चरपाः स्वपुण्यैः ॥

असम्बाधा कहा दु ॥१९॥

यदि कहा इति न्यासो भवति पञ्चमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति असंबाधा नाम ॥

गूढस्नायुप्रं (?) क्षितितलचरणाश्लिष्टा कम्बुग्रीवा या सजलजलधरस्निग्धा ।
ऊर्ध्वभ्रूलेखा समुच्छितभुजा नृणां पात्रं सौख्यानां रुचिरतनुरसम्बाधा ॥

४

अपराजिता हिमुनौ द ॥२०॥

यदि हिमुनाविति न्यासो भवति, सप्तमे अक्षरे छेदश्च भवति, (+ भवति) अपराजिता नाम ॥

कमलदलनखा महानयनान्तरा खगपतिनयना गजाङ्कुशनासिका ।
उरसि पृथुघना महोरुकटीकृता भवति तनुरियं रणेष्वपराजिता ॥

राजरमणीयं षि (षी)त्वे ॥२१॥

यदि षि (षी) त्वे इति न्यासो भवति सप्तमे अक्षरे छेदश्च द इति अनुवर्तनात्, भवति राज-रमणीयं नाम ॥

सुलक्षणविशिष्टः समाप्तबहुविद्यः सदा गुरुषु भीरुः सदा रिपुषु शूरः ।
अनङ्ग इव नित्यं जिनोत्सवकराङ्गः रराज रमणीयः परैरहरजय्यः ॥

प्रहरणकलिका विरिनि(नी) ॥२२॥

यदि विरिनि(नी) इति न्यासो भवति द इत्यनुवर्तनात् सप्तमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति प्रहरण-कलिका नाम ॥

अहिनकुलमुखं पृथुसमशिरसं जलदसरसिजं सितपुरुदशनम् ।
वरवृषभगतिं त्वरितमनुवशात् अनुसरति चमूः प्रहरणकलिका ॥

अतिशक्वरी ॥२३॥ चन्द्रवर्त्मा विविवि(वी) ॥२४॥

यदि विविवि(वी) इति न्यासो भवति, भवति चन्द्रवर्त्मा नाम ॥

वरवृषभगतिव(र)रुणसमसुनखः यदि च भवति मृगपतिसदृशमुखः ।
स किल भवति समुचितबहुयशाः दिवि भुवि च नरपतिरमरसमः ॥

माला दू ॥२५॥

सैव चन्द्रवर्त्मा यदि षष्ठे अक्षरे छेदो भवति, भवति माला नाम ॥

कमलशिरसमनिमिषसदृशमुखं निशितदशनमकुटिलचरणतलम् ।
अकुलजमपि पतिमिह यदि लभते सुसुखममयमनुभवति वसुमती ॥

मणिगणनिकरा द (दू) ॥२६॥

पुनरपि सैव चन्द्रवर्त्मा अष्टमेऽक्षरे छेदो भवति (+चेत्) भवति मणिगणनिकरा नाम ॥

गुरुतरमविषमसुरचितकठिनं सुघटितभुजतनुपुरुषगजवरम् ।
यदि भवति जगति पुलिनसममुरः श्रयति किमु तमिह मणिगणनिकरः ॥

मालिनो विरये ॥२७॥

यदि विरये इति न्यासो भवति दृ इत्यनुवर्तनात् अष्टमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति मालिनी नाम ॥

मम हयखुरभिन्नं मार्गरेणुं नरेन्द्राः
मुकुटपटविलग्नं भृत्यभूता वहन्ति ।
न च मम परितोषः येन(यत्र)मां वत्सराजः
प्रणमति गुणशाली कुञ्जरज्ञानदृप्तः ॥

अष्टिः ॥२८॥ ललना तिहिनि(नी) ॥२९॥

यदि तिहिनी इति न्यासो भवति, भवति ललना नाम ॥

अप्रधृष्यमभिरतिबलकुलधनकरं
नन्दमिन्दुवदनममलकमलवदने ।
ज्ञापयोपयशसमिभवरसदृशगतिं
द्वारि तिष्ठति तव वररुचिरिति ललने ॥

वेल्लिता पि (पी) हिम (मा) दू ॥३०॥

यदि पि (पी) हिमेति न्यासो भवति दू इति षष्ठे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति वेल्लिता नाम ॥

बलवान्नयवान् सततकुमतिकालापेक्षी
नृपतिर्विहितो गुणगणयुतवृत्तो वीरः ।
लभते पृथिवीं धनपशुवरपूर्णामक्षा
सुजितैस्त्वहितैः शठकुह(+कश)तैर्यो युक्तः ॥

वृषभगजविलसिता सौविनि (वी) द ॥३१॥

यदि सौविनि(वी) इति न्यासो भवति द इति सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति वृषभगजविलसिता नाम ॥

गोवृषभायताक्षमुरुललितपदगतिं
लम्बविशालकर्णमृदुलशिखरितनखम् ।
व्यायतबाहुकं मृदुलबहुलशिरसिजं
श्रीर्न जहाति नित्यवृषभगजविलसितम् ॥

कोमललता कवारौ दि(दी)दु ॥३२॥

यदि कवाराविति न्यासो भवति चतुर्थेऽक्षरे पञ्चमेऽक्षरे च छेदश्च भवति, भवति कोमलता[1] नाम ।

---

1 Both mss read कोमलल(लि) ता.

फुल्लैः पुष्पैः कोमललता रक्तप्रवालाङ्कुरैः
शोभायुक्ता षट्पदवृता स्यान्माधवीमाधवे ।
नृणां लक्ष्मीश्चात्मविभवैर्भाजित पुण्ये सति
या योजन्यामेव विकृतिं सा चापि तस्यात्यये ॥

अत्यष्टिः ॥३३॥ पृथ्वी षिषि(षीषी)रौ॥३४॥

यदि षिषि(षीषी) राविति न्यासो भवति, भवति पृथ्वी नाम ॥

सिरावितमस्थिकाष्ठमयमांसमृल्लेपनं
शरीरगृहमत्र पित्तकफमूत्रविड्भाजनम् ।
अनेकगदतस्करप्रचुरगोचरं नश्वरं
समेत्य मतिमान् प्रमाद्यति यदेकमेभ्यो जनः ॥

हरिणी विकसौ दू ॥३५॥

यदि विकसाविति न्यासो भवति दू इति षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति हरिणी नाम ॥

पलितवलिभिः कीर्णं तूर्णं जरैत्यजरा सती
स्रवति गलितादम्भःकुम्भादिवायुरपीदृशम् ।
असुखमतुलं रोगानीकोद्भवं च सुद(दुः)सहं
कथमिह भवे कष्टे मिथ्या वयं तु रमामहे ॥

शिखरिणी रासिशि(शी)॥३६॥

यदि रासिशि(शी)इति न्यासो भवति षष्ठेऽक्षरे छेदश्च दू इत्यनुवर्तनात् भवति, भवति शिखरणी नाम॥

असावस्तं यातो दशशतकरः संहृतकरः
उदेत्येष श्रीमान् विसृतकिरणः शीतकिरणः ।
इति प्रासादस्थः सयुवतिजनो माद्यति जनः
अजानन्नायुष्यं क्षुदितपतितौ हा[१] सपदि तौ ॥

मन्दाक्रान्ता कृतहये दि (दी) दू ॥३७॥

यदि [२]कृतहये इति न्यासो भवति चतुर्थे षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति मन्दाक्रान्ता नाम ॥

मद्योन्मत्तान् पथि निपतितान् कुक्कुरक्रोष्टु(ष्टृ)लङ्घ्यान्
अधाच्छादान् वमथु (थु) वशगान् मक्षिकाचुम्बितास्यान् ।

---

१ हासपदिती B., हासपटितौ A'.,

२ Both mss. read कृतहये in the Sutra as well as the Bhasya, but त must be dropped.

मन्दाक्रान्तस्खलितचरणान् गच्छतोऽन्यश्च वीक्ष्य
पानागारं प्रविशति नरस्तं वयं किं वदामः ॥

वंशपत्रपतितं लुसुहि (ही) दू (द्ल्) ॥३८॥

यदि लुसुहि (ही) इति न्यासो भवति दु (द्ल्) इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति वंशपत्र-
इतितं नाम ॥

व्याधिसहस्रवृषितततमाहिजरमरणे
योऽत्र भवे प्रमोदत इतरच्चवनमगणयन् ।
पर्वतकूटमेत्य मधुने तत इह निपतन्
लेढि स वंशपत्रपतितं मधुलवमणुकम् ॥

इति रत्नमञ्जूषिकायां छन्दोविचित्यां भाष्यतः षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः

धृतिः ॥१॥

धृतिरित्यधिकारः। किमर्थोऽयमधिकारः? छन्दोलक्षणार्थम्।

कुसुमितलता वेल्लिता म्तौ न्यौ य्यौ ॥२॥

यदि म्तौ न्यौ य्यौ इति न्यासो भवति पञ्चमेऽक्षरे षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति कुसुमितलता-वेल्लिता नाम।

राज्यं चक्राङ्कं नव च निधयो देवयोग्याश्च भोगाः
सैषा संपूर्णा रथचरधृतश्रीरपि प्राप्तनाशा।
वातेनोत्ताता कुसुमितलता वेल्लिता मालतीव
प्रायो नान्येषां श्वसनपवनाघातमात्रासहानाम्॥

वाचालकाञ्ची कौसेतौ दे ॥३॥

यदि कौसेताविति न्यासो भवति दे इति एकादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति वाचालकाञ्ची नाम।

नींवीशैथिल्यलीला प्रविलसद्वाचालकाञ्चीगुणाः
अन्तर्वक्त्राङ्गुलीभूतरसना नेत्रान्तकान्तेक्षणा।
या नार्यस्तत्र कार्या नच मतिं कामोयमेत्येव ते
शिष्टा ह्याचक्षते शास्त्रमतयो वां वञ्चनां काञ्चनम्॥

अतिधृतिः ॥४॥ शार्दूलविक्रीडितं मनौ(नौ)वे तौ दै ॥५॥

यदि मनौ(+वे)ताविति न्यासो भवति दै इति द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति शार्दूल-विक्रो(+डि)तं नाम॥

पर्जन्यः पिशितं प्रवर्षति न तत् प्रोद्भिद्यते भूतले
वृक्षा मांसफला भवन्ति न, न तत्प्रस्यन्दते पर्वतात्।
सत्त्वानां विकृतिः न चापि पिशितं प्रादुर्भवत्यन्यथा
हत्वा प्राणिन एव तत्, भवति हि प्राज्ञैः सदा वर्जितम्॥

वायुवेगा मरुपिनौ ॥६॥

यदि मरुपिनौ इति न्यासो भवति दै इत्यनुवर्तनात् द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, (भवति) वायुवेगा नाम॥

मान्धातैलययातियातिनहुषा गिरय इव स्थिताः
नानादिग्गतवायुवेगनिहतद्रुमतृणराजिवत् ।
तां तां प्राप्य दशां निपेतुरचिरात् कृतसुकृतक्षयाः
तस्मात्पूर्वकृतं पुरेति निधनं व्रजत तपोवनम् ॥१॥

माधवीलता कौलिनि(मी)नौ द ॥७॥

यदि कौलिमि(मी)नाविति न्यासो भवति द इति सप्तमे अक्षरे छेदश्च भवति, भवति माधवीलता नाम ॥

वेश्या दृश्या प्रमत्तान् भ्रमरगणानिव माधवीलता
बध्वा(द्ध्वा)गाढोपगूढं हरिणगणानिव वागुरा वने ।
आध्नास्या(दाया)र्थं तु तेषां यदि रमितव्रणिनो जरायुतात्(न्)
निस्सारत्वं विदित्वा त्यजति शिशूनिव वानरी लघून् ॥

कृतिः ॥८॥ दीपिकाशिखा सिचिह्ला(ह्लौ)दिदू ॥९॥

यदि सिचिह्लाविति न्यासो भवति दिदू इति तृतीये षष्ठेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति दीपिकाशिखा नाम ॥

पण्डितजनसहवासो जनयति मतिमुत्तमां नृणाम्
काञ्चनगिरिवरपार्श्वे भवति परभृतोऽपि तत्प्रभवः ।
दुर्मतिजनसहवासः प्रशमयति मतिं सतामपि
मारुत इव सुसमृद्धां विपुलविमलदीपिकाशिखाम् ॥

सुवदना यशिवानि(नी)द ॥१०॥

यदि(+य) शिवानि(नी) इति न्यासो भवति द इति सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति (भवति) सुवदना नाम ।

शीर्णा बीजेन तुल्या इति किल दशना ओष्ठौ च विगतौ
केशा भूमौ विकीर्णाः कुवलयसदृशे नेत्रे च विकृते ।
चारू रम्भानिभोरू स्वजघनफलकौ स्वस्थौ पृथुगतौ
गृध्रो गोद्यं शरीरं यदि किरति तदा सैषा सुवदना ॥

प्रकृतिः ॥११॥ स्रग्धरा कौमिहये दद ॥१२॥

यदि कौमिहये इति न्यासो भवति सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति स्रग्धरा नाम ॥

चित्रं संचिन्त्य तैस्तैः पथिभिरुरुभुजैः शत्रुवर्गं निहत्य
भोगान्भुक्त्वा यथेष्टं ललितयुवतिभिः यौवने रञ्जयित्वा ।

वार्द्धि(र्द्ध)क्येहं करिष्ये तप इतिविमतेस्तर्कितं सांप्रतं नु
आपत्याहृत्यकालो नयति समप्रभौयात याभाभिकोऽपि ॥

द इति वर्तमाने पुनः द द्ग्रहणं ज्ञापकं छन्दसः उत्तरं न गच्छति उभयच्छेदाधिकार इति ॥

कथा द्रि(हद्रि)गतिः मौनहूसौ ॥१३॥

यदि मौनहनुसाविति न्यासो भवति द द इत्यनुवर्तनात् सप्तमे सप्तमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति कथागतिर्नाम ॥

मूको वचःप्रवृत्तिं गमनमचरणोऽवलोकनमन्धकः
श्रोत्रेन्द्रियेण हीनः श्रवणमभिहितः प्रकीर्णकथारसैः ।
पक्षी प्रलूनपक्षः खगमनमुदधौ गतिं स शिलाप्लवः
कर्तुं यथा न शक्तो न सुकृतरहितः तथा सुखमाप्नुयात् ॥

ललितविक्रम(मः)स्तितितौद(दूल्ह) ॥१४॥

यदि स्तितिताविति न्यासो भवति द(दूल्ह)इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति ललितविक्रमो नाम ।

एलकयानकृत्रिमगजैगतैर्ललितवे(वि)क्रमः शैशवः
मत्तगजेन्द्रवाजिचरणैरमा(गा)चरणविक्रमो यौवनः ।
एष जरानिगीडितजवः तवाद्य चलविक्रमः स्थाविरः ।
एहि वनं पुरेति चयकृन्न ते पुरुषविक्रमो ह्यन्तकः ॥

आकृतिः ॥१५॥ भद्रकवृत्तं भिपिपिपि(भीपीपीपी) दूल्ह ॥१६॥

यदि भिपिपिपि(भीपीपीपी)इति न्यासो भवति दूल्ह इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति भद्रकं नाम ॥

पादकरोदराधरकृतोदयोरि च पराजयः किमु पुनः
काकिणिकान्त एव भवता वृकोदरवरे पतन(न्)स्वहृतये ।
यस्य पराजयेन सततं जयोपि च विनाशये(+यु)रिति वै
तन्मनुजाधिदेव पथि यः कथं स लभतेऽणुभद्रकमपि ॥

दीपार्चिः किरिताता(कीरितिलौदै) ॥१७॥

यदि कि(की)रितिला(लौ)इति न्यासो भवति दै इति द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति दीपार्चिः नाम ॥

यश्चानेकभवार्जितोरुसुकृतप्रसादजनितः सुदुर्लभः
दीपार्चिस्त टि (डि) दिन्द्रचापजलदसत्वरसलिलबुद्बुदोपमः ।
आशुध्वंसितया तमेत्य नृभवं चिरं न च विलम्बितुं क्षम–
मत्याबाधसुखापवर्गभवने त्वरां कुरु च जैनमाश्रय ॥

विकृतिः ॥१८॥ वृन्दारकं रि ति तौ तौ ॥१९॥

यदि रि ति तौ ताविति न्यासो भवति, भवति वृन्दारकं नाम ॥

स्वन्मदजलार्द्रगण्डमदगन्धहस्तिक्षरद्रक्तपानोचितः
मृगेन्द्रनखवज्र दारुणकरूक्षवक्षोमुखो व्याघ्रवृन्दारकः ।
जरा मुदितनष्ट ××बलवीर्यमानावलेपो वराकः पुनः
स भक्षयति दर्दुरान् मृगगणैरवक्षिप्यमाणः शृगालादिभिः ॥

अश्वललितं वि षि षि षि (वी षी षी षी) दे ॥२०॥

यदि वि षि षि षि (वी षी षी षी) इति न्यासो भवति दे इत्येकादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवत्यश्वललितं नाम ॥

अवनितलप्रतिष्ठितपदस्समग्रतनुताम्रपुष्पितनखः
विपुलललाटकर्णनयनः प्रसन्नतनुरोमशोभिततनुः ।
दिवसकरांशुवाहदशनो गिरिस्थलसुसंहतायतभुजः
कुलबलदुर्गतोऽपि पुरुषः प्रशास्ति किल राज्यमश्वललितम् ॥

मन्द्रक्रीडा काशि हिवि ह (वीद्) ॥२१॥

यदि काशि हिवि (वी) इति न्यासो भवति ह (द्) इत्यष्टमेऽक्षरे छेदश्च भवति, (भवति)मन्द्रक्रीडा नाम ॥

विद्युन्मद्वन्मत्तारेखा सुरपथनुतविततजलधररवः
सस्यश्यामः शैलाद् दुर्गे धृतमुपलविवरनिपतितसलिलः ।
वृक्षाकम्पी चण्डो वायुः परिपतितहृषितशिखिरुतसहितः
फेनैः शुक्लैः कीर्णो नद्या नवसलिलचपलसमुपहृततटः ॥

संकृतिः ॥२२॥ तन्वी सहि(ही) सृहे दै ॥२३॥

यदि सहि(ही) सृहे इति न्यासो भवति दै इति द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति तन्वी नाम ॥

चापनतभ्रूः समसितदशना बर्हिणचातकशुकसदृशाक्षी
वृत्तमहोरु(रू) घनपृथुजघना मृद्वसितायतसमकृशकेशी ।
संयतपार्ष्णिस्तनुमुखचरणा सूक्ष्मतनूरुहततततनुजङ्घा
सा किल तन्वी मृदुकरचरणा स्यादिह केवलमवनिपपत्नी ॥

विभ्रमगतिः किषि(कीषी) शसौ ॥२४॥

यदि किषि (कीषी) शसाविति न्यासो भवति दै इति अनुवर्तनात् द्वादशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति विभ्रमगतिर्नाम ॥

५

यैषा कुष्ठविकारपामकिटिपक्लिन्नस्रवत्'''दितरक्तकलेवरा
यैषा जीर्णकुलीरवत्प्रशिथिला मुक्तौष्ठसन्ध्यस्थिजालशिरातता ।
यैषा गृध्रनिकण्ठकूजितशिरा सर्वान्त्रमेदश्शिपिशितान्तरा
ताभिः प्राज्ञवशा न यान्त्यपगतिं भ्रूक्षेपणाभिहता नरबुद्धयः ॥

अभिकृतिः ॥२५॥ क्रौञ्चपदं लेलेविविवि(वी)दूल(दूल्) ॥२६॥

यदि लेलेविविवि(वी) इति न्यासो भवति दूल (दूल्) इति दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति क्रौञ्चपदं नाम ॥

यजिनगीतं स्पष्टपदार्थं गणधरविरचितमृदुविशदपदं
तत्त्वविभागव्यक्तिगभीरं सुनिपुणबहुविधनयशतबहनम् ।
स्वार्थविशेषध्यानपुराणं क्षपयति मलमपि जनयति पटुतां
तद्भुवनैकज्योतिरुदारं श्रुतमपरमयतु मम मतितिमिरम् ॥

हन्स(हंस)पदा यीयीविविवि(वी) ॥२७॥

यदि यियि(यीयी)विविवि(वी)इति न्यासो भवति दूल(दूल्)इत्यनुवर्तनात् दशमेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति हंसपदा नाम ॥

वीरं विमलं देवं त्रिदशासुरनरवरपतिगणधरमहितं
रागाद्ययुतं रोगैर्वियुतं विजननमरणममरणममलम् ।
हेमाभतनुं कामाविजितं दिवि भुवि च विततसुविमलयशसं
नत्वा जिनपं मर्त्यो लभते शिवपदमपगतभवभयमुरु तत् ॥

उत्कृतिः ॥२८॥ अपवाहं किविविविवा दो ॥२९॥

यदि किविविविवा इति न्यासो भवति दो इति त्रयोदशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति अपवाहं नाम ॥

वाक्यं मे शृणु वरतनु निगदितमिह तव हितमतिसुलभं शश्वत्
कामेषु प्रचलितमतिकृशशरमपि सुखकरमपि बहुकारुण्यम् ।
दासं त्वं त्यजसि रिपुमिव सकलविमलशशिनिभमुखसुशीलं ते
सख्यं मे यदि गणयसि न तु मम हितमिह खलु सखि तव मोक्तव्यम् ॥

आपीलं सिवियविवि(वी)दो ॥३०॥

यदि सिवियविवि(वी)इति न्यासो भवति दो इति त्रयोदशाक्षरे छेदश्च भवति, भवति आपीलं नाम ॥

मानवपतिरुरुबलनयसत्त्वो भूत्वा भुवमनुभवति च सकलां
भासुरसुरवरपरिषदुपेतो नाकालयगणपतिरपि भवति ।
मोक्षजमनुपममपगतशोकापीलं सुखमविचलमपि लभते
धार्मिक इति तव धृतिमतिचेष्टा धर्मे कुरु बुध जिनबुधकथिते ॥

भुजङ्गविजृम्भितं काशिहि मुनौ द(द्)दे ॥३१॥

यदि काशिहिमुनाविति न्यासो भवति द(द्)दे इत्यष्टमे एकादशेऽक्षरे छेदश्च भवति, भवति भुजङ्गविजृम्भितं नाम ॥

नागेनागे नागेनागे स्थलममति विगलितमदे प्रवुष्यति धर्मगे
शेषेशेषे शेषेशेषे सितजलदपटहनिनदैः सदा किल बोध्यते ।
तस्यैतस्यै तस्यैतस्यै सितमसि विरजसि परिणायबिन्दुनिभामये
हेतौहेतौ हेतौहेतौ कथ किंनुत भवति भवतो रजस्तमसोर्गुणः ॥

तत्र अ(ष्टा)धिका मध्यमतिच्छन्दः ॥३२॥

यदि भुजङ्गविजृम्भितमेव मध्य(ध्ये)लघुभिरष्ट(ष्टा)धिकैर्युक्तं भवति, भवति अतिच्छन्दो नाम ॥

एवं प्रोचुः क्रौञ्चस्याग्रं मणिकनकरजतपटलशशिकिरणसदृशं शि(खि)ताम्बुदसंनिभम् ,
क्रीडाभूमिः गन्धर्वाणां गजगवयशरभरुरुपृषतशकुनिचरितं प्रतिष्ठितकिंनरम् ।
भिन्नं शक्त्या लीलावत्या स्फुटकुटजतिलकखदिरधवविषमशिखरं लतागृहसंकटम् ,
स्कन्धस्वेदैः देवैः दृष्टो हितमिव पिबतु तरुणरविसदृशवदनो मयूरवरध्वजः ॥

चण्डवृष्टिप्रयातं हितः ॥३३॥

आदित एव षड् लघवो भूत्वा पुनर्मध्यलघुत्रिका भवन्ति, भवति चण्डवृष्टिप्रयातं नाम ॥

नदति मदशिखी न भा भाति विद्युल्लताजालमालोशि(च्छि)ताम्भोदकीर्णं नभः
स्फुटमदजननः प्रवात्यम्बु लब्ध द्धूकादम्बर(?) वारिपूर्णाध्वगो मारुतः ।
जलधरसमये न मया हित्वा प्रवात प्रसीद प्रियैरास्थितोऽप्यमतः
नवजलधरवृन्दमालोक्य मा काङ्क्षते तत्परश्चण्डवृष्टिप्रयाते ॥

आह च एतावन्तः मध्यलघुत्रिका इत्यनुक्तत्वात् न ज्ञायन्ते इत्यत्रोच्यते । अतिच्छन्द इत्यनुवर्तनात् तत्रत्यप रमिताभिधानाच्च यावद्भिर्मध्यलघुत्रिकैरादिस्थैः षड्भिः लघुभिश्चोत्कृतिरतिकान्तो भवति सप्तप्रभृतिभिः मध्यलघुत्रिकैः षड्भिर्लघुभिश्च ।

गाथाऽप्रसिद्धा ॥३४॥

अस्मिन् शास्त्रे त्रितयं सिद्धं जातयो नियता अपि छन्दांसि च इति । नियतमात्रा अनियताक्षराः जातयः । यथाहुः आर्याद्या (:) नियतमात्राणि नियताक्षराणि यानि यथा तानि उद्गतप्रभृतीनि । नियताक्षराणि अनियतमात्राणि छन्दांसि तानि गायत्रीप्रमुखानि च । तस्मात् त्रितयादन्यथा यो दृश्येत श्लोकैः सा गाथा नाम भवति । यथा—

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा ।
माद्रीसुतौ [1]पुष्पसमृद्धिरेव मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ॥

इति रत्नमञ्जूषिकायां छन्दोविचित्यां भाष्यतः सप्तमोऽध्यायः ॥

---

[1] पुष्पफले समृद्धिरेव A.

अष्टमोऽध्यायः

अत्र गायत्र्यादिषूत्कृतिपर्यवसानेषु तनुमध्यादिभुजङ्गविजृम्भितपर्यवसानानि वृत्तानि उपदिष्टानि। किन्तु एषु छन्दःसु तान्येव वृत्तानि अन्यान्यपि सन्तीति। अत्रोच्यते। अन्यान्यपि सन्ति तान्येतानि सन्तीति ज्ञापनार्थमयमुपायो विधाय्यते॥

मर्धे ॥१॥ न रूपे ॥२॥ नि द्वे ॥३॥ मि कृतिः ॥४॥

यस्य कस्यचिच्छन्दसः समवृत्तानां जिज्ञासायां तच्छन्दसः पादाक्षराणि न्यस्य अर्धं त्यक्त्वा मर्धेति गुरुं न्यस्य, यत्रादौ राशिरर्धं न ददाति तत् रूपं त्यक्त्वा नरूपे इति लघुं न्यस्य एवं पुनः पुनः।

अन्त्यरूपम् ॥५॥

तेषां न्यस्तानां गुरुलघूनामन्त्ये अधस्तादेकं रूपं न्यस्य प्रतिलोमम्, अन्त्ये यदि लघुस्तत्र लघुनि (+नि) द्वे इति द्विगुणं कृत्वा यदि गुरुस्तत्र गुरौ मि कृतिरिति तावत्कृत्वः तच्छन्दसः समवृत्तान्येतावन्ति इति निर्दिशेत्। अत्राह। कथमेतदवगम्यते? पादाक्षराणि एव क्रियते गृहीत्वा न सर्वाक्षराणि क्रियन्ते इत्यत्रोच्यते। पादे गायत्री दू अक्षरा इति प्रतिपादाक्षरपरिमाणमुक्तं पुनस्तानि चतुर्गुणितानि छन्दोक्षराणीति लक्षणतोऽवगम्यते। तत्र लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव इति पादाक्षरेष्वेव प्रसिद्धिः। मर्धे नरूपे निद्वे मिकृतिरित्येतानि चत्वारि सूत्राणि युगपद् व्याख्यातानि॥

तत्समम् ॥६॥

तान्येतानि अनेन क्रमेणाधिगतानि तस्मिन् तस्मिन् छन्दसि प्रवृत्तानि भवन्ति॥

द्विः परस्य ॥७॥

यस्य कस्य छन्दसः समवृत्तानि द्विगुणितानि तस्मात्परस्य छन्दसः समवृत्तानि भवन्ति। तत्कथम्? जगत्यां समवृत्तानि चत्वारि सहस्राणि षण्णवत्युत्तराणि तानि द्विगुणितानि अष्टसहस्राणि शतद्वानवत्युत्तराणि अतिजगत्याः समवृत्तानि भवन्ति।

द्वकृत्यूनं पूर्वेषाम् ॥८॥

द इति पारिभाषिकसंज्ञा अष्टानां कृतिरिति लौकिकी। तावत्कृत्वः कृताः चतुःषष्टिरित्यर्थः। यस्य कस्य छन्दसः समवृत्तानि चतुःषष्ट्या वियुतानि तस्मात्पूर्वेषां सर्वेषां गायत्र्यादीनां समवृत्तानि। कथम्? जगत्यां समवृत्तानि चत्वारि सहस्राणि षण्णवत्युत्तराणि तेभ्यः चतुःषष्टिं व्युदस्य शेषं चत्वारि सहस्राणि द्वात्रिंशदुत्तराणि गायत्र्यादीनां समवृत्तानि त्रिष्टुप्पर्यवसानानां भवन्ति।

समकृतिरर्धसमं च ॥९॥

समानि तानि तावत्कृत्वः कृतानि समार्धसमपिण्डो भवति। ततः समार्धसमानि व्युदस्य शेषाणि विषमाणि भवन्ति। संख्यासमाप्त्यनन्तरं प्रस्तार उच्यते। अनन्तरं नष्टमुच्यते। विज्ञातगुरुलघुकस्य वृत्तस्य संख्या-

मात्रेण गुरुलघुविन्यासनिर्णयो नष्टः । आह । गायत्र्यादीनां समवृत्तानि यानि गणिततोऽवगतानि तानि येन क्रमेण प्रत्यक्षतः उपलभ्येरन् स चापि क्रमोऽस्ति ? अस्ति इत्युच्यते । पृथिवीं समतलां कृत्वा परस्परविशिष्टगुरुलघुविन्यासानि प्रस्तार्य दृश्यान्यनेन क्रमेण ।

म्निन्त्यधोधः ॥१०॥

मिति वक्रां रेखामालिख्य निति ऋज्वीं चाधोधः एकान्तरिते लेख्य यावत्संख्यापरिमाणमयं सर्ववृत्तानां प्रथमाक्षरविन्यासः ।

द्विर्द्विरितः ॥११॥

द्वितीयाक्षरस्थाने वक्रे द्वे द्वे ऋ(ज्वी)द्वे इत्यधोधः प्रस्तारयेत् । ततस्तृतीयाक्षरस्थाने वक्राश्चतस्रः ऋज्व्यश्च आछन्दसः पादाक्षरपरिसमाप्तेरेष प्रस्तारक्रमः । अनेन प्रस्तारक्रमेण तानि वृत्तानि परस्परविशिष्टानि प्रत्यक्षतो दृश्यन्ते । अथ नष्टमाह ।

नर्धे ॥१२॥ सैकस्य म् ॥१३॥

इमे द्वे सूत्रे सह व्याख्यास्यामः । तेषु प्रस्तारितेषु मध्ये यद्येकं विनश्यति तदेतावतिथमिति संख्यां ज्ञात्वा तावन्त्यक्षराणि न्यस्य अर्धं त्यक्त्वा नर्धे इति लघुं न्यस्य, यदार्धं न ददाति तदा रूपं प्रक्षिप्य अर्धं त्यक्त्वा सैकस्य मिति गुरुं न्यस्य एवं पुनः पुनः यावत्छन्दसः पादाक्षरपरिमाणं तत्तावतिथं वृत्तं तादृग्विन्यासं भवति ।

अथ उद्दिष्टमाह । कश्चिद् ब्रूयात् । किंचिद्वृत्तमुद्देश्यमेतत् वृत्तमेतस्मिन् छन्दसि कथितमिति । तद्वृत्तं प्रस्तार्य (+ अ)न्ते तदधस्तादेकमक्षरं यस्य अनेन क्रमेण कुर्यात् ।

नि द्वे ॥१४॥ मि चैकं त्यजेत् ॥१५॥

तमक्षं प्रतिलोममुन्नयेत् लघौ लघौ द्विगुणितं कुर्यात् । तथा गुरावपि । किञ्चान्यत् । गुरावेकमक्षरं त्यजेच्च यदागतं तावतिथं वृत्तं छन्दःप्रस्तारमिति निर्दिशेत् । सूत्रद्वयं युगपद्व्याख्यातम् ।

ददादि ॥१६॥

इति यथाक्षरं एकद्वित्रीणि इत्येवमेकाद्येकोत्तरं यावच्छन्दःपादाक्षरपरिमाणं न्यस्य ततः संख्यां ज्ञात्वा तावन्त्यक्षराणि । सपूर्वमनन्त्यः तेष्वेकारादिकेषु राशिषु पूर्वं पूर्वमविनष्टमेव परस्मिन्परस्मिन् प्रक्षिप्य वर्जयित्वान्त्यं अन्त्यं केवलं गृहीत्वा अतोऽन्यत्र स्थापयित्वा पुनश्च पूर्वं पूर्वं परस्मिन्परस्मिन् प्रक्षिप्य अन्त्यमन्त्यं केवलं गृहीत्वा पूर्वपदं स्थापयेत् ॥

तद्ददादिनः ॥१७॥

तथे(थै)ता राशयोऽप्यागता एकलघुद्विलघुप्रभृतयो भवन्ति । आह । संख्यादीनां पृथक् पृथक् अनुक्रमाण्युपदिष्टानि किं तथैवाक्रमेरन्, आहोस्विदन्योऽप्युपायोऽस्ति येनैकत्वेऽनुपक्रमोऽस्तीति । अस्तीत्युच्यते[1] ।

---

१ Here mss. B. ends.

द्वाद्विद्विः ॥१८॥

पूर्वकं न्यस्य तत्प्रतिराशयो द्विः कार्याः । एवं प्रतिराशयो द्विगुणिताः कार्याः राश्यस्तावन्तो यावन्ति पादाक्षराणि । तत् कथम् । पूर्वमेकं न्यस्य तत् प्रतिराश्यादिकृता द्वे द्विः कृत्वा ततः अष्टौ षोडशद्वात्रिंशत् इति । गायत्रीपादाक्षराणि षडिति षड् राशयः कार्याः ॥ इदानीं ग्रहणोपायो विधास्यते । कथम् ?

सैकं यत्र यावत्तत्र तावतिथे नः ॥१९॥

ते एकादिका राशयः पूर्वं स्थापिता अक्षरस्थापनीयाः । यस्मिन् यस्मिन्स्थाने स्थिता एको वा द्वौ वा त्रयो वा चत्वारि वा पञ्च वा षडपि वा एकरूपसंहितायां संख्या भवन्ति । तावतिथे वृत्ते तल्लघवो भवन्ति । तत्कथम् ? आद्यक्षरस्थाने एकं प्रक्षिप्य द्वे ततो द्वीति वृत्ते आद्यक्षरं लघ्विति निर्दिशेत् । तथा तथा प्रथमद्वितीयराशि त्रीणि सैकानि चत्वारि ततश्चतुर्थप्रथमद्वितीयाक्षरे लघू एवमाप्रस्तारावनानान्नेयमिह संख्यादीनां चिन्तनाशे षडपि राशयः सहिता एकरूपयुतश्चतुःषष्टिर्भवन्ति ॥ ततश्च षष्ठं वृत्तं सर्वलघ्विति सिद्धम् । तेन सर्वलघ्ववसानात् वृत्तानां चतुःषष्टिरिति वृत्तसंख्योपलब्धा लघ्वक्षरसायान् षडपि राशीनाश्रित्य प्रक्षेपभूतेनैकवृत्तरूपेण प्रथमलघुं प्रस्तारयेत् ॥ पुनः प्रथमाक्षरे स्थानि एकस्मिन्प्रक्षेपभूतं प्रक्षिप्य संजाते द्वे ततो द्वितीये प्रथमं लघुं प्रस्तारयेत् । पुनः द्वितीयाक्षरस्थाने ये ह्यक्षरराशावेकं प्रक्षिप्य त्रीणि ततस्तृतीये लघुं प्रस्तारयेत् । पुनः प्रथमद्वितीयराशिद्वये रूपं प्रक्षिप्य चत्वारि ततश्चतुर्थं प्रथमं द्वितीयं लघु प्रस्तारयेत् । एवं पञ्चमाद्यानि यथा भवन्ति तथा प्रस्तारयेत् ।

इदानीं लघुगुरु लघुगुरु इत्येवं न्यासवृत्तं कथमिति प्रपृष्टे एतद्वृत्तं प्रथमचतुर्थपञ्चमराशयः सहिताः सहैकरूपाः षड्विंशतिरिति निर्दिशेत् । एतदुद्दिष्टम् । अथेदानीं षड्विंशतिः कीदृग् इति पृष्टे प्रथमचतुर्थपञ्चमराशयः सहिताः सहैकरूपाः षड्विंशतिर्जातेति प्रथमं च ।

श्रीमदनन्तनाथाय नमः ।

लगक्रियां सुधीः कुर्यात्तत्र येऽङ्काः स्थिताः क्रमात् ।
तत्तदङ्कप्रसंख्यातान् कोष्ठांस्तेषां पुरो लिखेत् ॥१॥

सर्वगुर्वन्तसविधकोष्ठे तत्रैकमालिखेत् ।
तमेव द्विगुणीकृत्य तस्याधो द्व्यङ्कमालिखेत् ॥२॥

द्व्यङ्कं च द्विगुणीकृत्य चतुरङ्कमथालिखेत् ।
तत्रैकमपनीयोर्ध्वपङ्क्तौ त्र्यङ्कमुपक्षिपेत् ॥३॥

त्र्यङ्कं च द्विगुणीकृत्य षडङ्कं तदधः क्षिपेत् ।
तत्रैकमपनीयोर्ध्वं पङ्क्तौ पञ्च लिखेत्ततः ॥४॥

चतुरङ्कद्विगुणनात् अष्टौ च तदधः क्षिपेत् ।
तत्रैकापनयात् सप्ताप्यूर्ध्वपङ्क्तौ निवेशयेत् ॥५॥

एवं द्विगुणितान् पञ्चादिकानन्तानधः क्षिपेत् ।
तानैवैकोनकानूर्ध्वपङ्क्तौ कुर्वन्नमुं विधिम् ॥६॥

लगक्रियाङ्कसंदोहसंख्या संपूर्णतो विधिम् ।
कुर्वीत तावदङ्कैश्च कोष्ठाः सर्वे स्युरङ्किताः ॥७॥

प्रस्तारो मेरुनामायमत्रच्छन्दोद्भवं भवेत् ।
एकलघ्वादिवृत्तानाम् उत्पत्तिस्थाननिर्णयः ॥८॥

एकद्व्यादिलगक्रियाङ्कसमसंख्यानेषु कोष्ठान्तरे-
ष्वेकादीन् द्विगुणानधो विरचयेत्तांश्चोर्ध्वमेकोनकान् ।
इत्यन्तावधि मेरुरेष महितः स्याद्भर्मनाह्वयः
छन्दस्येकलगादिवृत्तजननस्थानं त्विह ज्ञायते ॥९॥

एकद्व्यादिलगक्रियाक्षगणनामानप्रमाणालयैः
मेरुक्ष्माधरवद्विरच्य खटिकोत्कीर्णैस्तथाधालये ।
वृत्तं न्यस्य तदादिमं द्विगुणयंस्तथाप्यधः स्थापयेत्
एकोनेन तदोपरि प्रतिलिखेदेवं हि मेरुक्रिया ॥१०॥

खण्डमेरुप्रस्तारो यथा—

सैकामेकगणोज्ज्वलामभिमतच्छन्दोक्षरागारिकाम्
एकां श्रेणिमुपक्षिपन्नधरतोऽप्येकैकहीनाश्च ताः ।
ऊर्ध्वे द्विद्विगृहाङ्कमेलनमधोऽधः स्थानकेष्वालिखेत्
एकच्छन्दसि खण्डमेरुरमलः पुन्नागचन्द्रोदितः ॥११॥

एतत्पद्योक्तक्रमेण प्रस्तारे कृते विवक्षितच्छन्दसः लगक्रियया सह ततः पूर्वस्थितसकलच्छदसां लगक्रियाः सर्वाः समायान्तीत्यर्थः ॥

प्रस्तारः—

चतुर्थं छन्दः

१	१						
४	२	३	१	९			
६	४	६	७	१०	११		१३
४	६	१२	१४	१५			
१	६						

अधमेरुः

१	४	६	४	१
१	३	३	१	
१	२	१		
१	१			
१				

पञ्चमं छन्दः मेरुप्रस्तारः

१	१									
१	२	३	५	९	१७					
१०	४	६	७	१०	११	१३	१८	१९	२१	२५
१०	८	१२	१४	१५	२०	२२	२३	२६	२७	२९
५	१६	२४	२८	३०	३१					
१	३२									

NOTES.

[NOTES:—In the graphical representation, I stands for a short letter and S for a long one.]

ADHYĀYA I.

Sūtras 1-10: These explain the Saṁjñās or the technical terms employed by our author to represent the eight Akṣara Gaṇas or groups of 3 letters each, first employed for scanning a line of Varṇa Vṛttas by Piṅgala. Our author uses a double set of these terms one consisting of consonants and another of vowels alone. The last vowel and the last consonant in each of the first eight Sūtras stand for the metrical group of short and long letters represented by the word of which the Sūtra consists. Thus क् or आ stands for a group of three long letters and so on (see Sūtras 9 and 10). Similarly, the 2nd consonant in each of the first four Sūtras and the 1st consonant in each of the first two Sūtras stand for a metrical group of short and long letters which is represented by that part of the Sūtra which ends with that consonant. Thus य् stands for a group of two long letters and म् stands for a single long letter (see Sūtra 10 and commentary). The following is a full list of such terms with their equivalents employed by Piṅgala wherever possible:—

क् or आ = SSS = म् of Piṅgala
च् or ए = ISS = य् ,, ,,
त् or औ = SIS = र् ,, ,,
प् or ई = IIS = स् ,, ,,
श् or अ = SSI = त् ,, ,,
ष् or उ = ISI = ज् ,, ,,
स् or ऋ = SII = भ् ,, ,,
ह् or इ = III = न् ,, ,,
य् = SS; र् = IS; ल् = SI; व् = II;
म् = S = ग् of Piṅgala; न् = I = ल् of Piṅgala.

The last two symbols, namely those for single long and short letters, clearly show the influence of Piṅgala's मगण and नगण representing all long and all short letters respectively.

S. 11:—Even a short letter (न्) is treated as a long one (म्) when it is followed by a conjunct consonant (संयोग). According to the commentator, the word अपि shows that the rule is optional, so that sometimes, the short letter does not become long even when followed by a conjunct consonant. It also suggests that a long letter is ordinarily equal to two short ones.

S. 12:—At the end of a line, a short letter is considered as equal to a long one metrically.

S. 13:—This however, is not applicable to short letters standing at the end of *odd* lines of the Āryā and such other metres. The illustration No. I given for Sūtra No 11 (eleven) serves also for this rule, says the commentator; for, the short tetter ण occurring at the end of the 3rd line of the stanza which is in the Āryā metre is not to be considered as long.

S. 14:—The letters द, दा, दि, दी etc. respectively represent the numbers 1, 2, 3, 4 etc. This is an important innovation introduced by our author. Earlier and later writers employ popular terms signifying a definite number such as *samudra* standing for 4, *nayana* standing for 2 and so on.

S. 15-16:—Sometimes the letter ण् is added to this letter द, दा, दि etc. (thus दण्, दाण्, दिण् etc.) as a mere ornamental appendage; but this is not always done.

S. 18–19—These two Sūtras refer to the Yati, which ought to be agreeable to the ear. It always occurs at the end of a line, but sometimes even in its middle. I am unable to understand fully these two Sūtras with their Bhāṣya. It is quite likely that what is shown as the Bhāṣva by my manuscripts is a part of the Sūtras themselves, here. For a further exposition of the rules about Yati, see Halāyudha, on Piṅgala's Chandas, 6.1 (N. S. P. 3rd edition, pp. 100–103).

S. 20-24:—These 4 Sūtras enumerate the broad divisions of the Varṇa Vṛttas, beginning with Gāyatrī having 6 letters in each of its four lines and ending with Utkṛti having 26 letters in each of its four lines. It deserves to be noted that our author does not define the earlier classes of metres, i.e, those that contain from 1 to 5 letters in each of their four lines. In this he follows Piṅgala and Jayadeva. Even Bharata enumerates these five classes only

under the Prākṛta metres in ch. 36 (but not under Sanskrit metres in ch. 16) meaning thereby that they were not current in Sanskrit poetry as a rule. Prākṛta metricians, who also write on the Varṇa Vṛttas seem to have first introduced and illustrated them. Thus Virahāṅka, and probably also Svayambhū, define these five classes among the Varṇa Vṛttas. They are then followed by Kedāra and Hemacandra, by whose time their definition seems to have already come in vogue.

S. 25:—This Sūtra mentions a special term namely ग् for a Mātrā Gaṇa of four Mātrās. The Mātrā Gaṇas are needed for scanning the Mātrā Vṛttas like the Āryā. In making use of only one Mātrā Gaṇa, namely, the Caturmātra, our author again closely follows Piṅgala. As a matter of fact, all writers on Sanskrit prosody including Hemacandra have not made use of any other Mātrā Gaṇa in defining the Sanskrit Mātrā Vṛttas. For this and the next Sūtra, compare Piṅgala, 4. 12-13.

S. 26:—This Sūtra gives the five different kinds of the Caturmātra Gaṇas in view of the short or long letters that may be employed in them. They are:— ग्=SS; ई=IIS; ध्=ISI; ऋ=SII; and न्+ इ=I,III. Three of these are already noticed among the 8 Akṣara Gaṇas, since they contain three letters each. The first and the last are new, since they contain 2 and 4 letters respectively.

ADHYĀYA II.

Piṅgala has defined the Āryā group and the other Mātrā Vṛttas in one chapter viz. the 4th. Really speaking, Sanskrit Mātrā Vṛttas consist of three main groups, namely the Āryā group, the Vaitālīya group and the Mātrāsamaka group. Out of these, the Āryā group and the Mātrāsamaka group are groups of pure Mātrā Vṛttas, where a definite number of Mātrā Gaṇas, kept separate from each other by the avoidance of a long letter at their junction, is required. The third Group is a group of metres which are called Mātrā Vṛttas, because in them a definite number of Mātrās, and not letters are required to be employed in a line. These Mātrās, whatever their number, are not rigidly divided into a number of definite groups as in the case of the Āryā and the Mātrāsamaka. Only, there are

restrictions about the introduction or avoidance of short and long letters for representing a particular Mātrā or Mātrās.

Out of the three groups the Āryā group consists of metres of two lines while the Vaitālīya group consists of metres of four lines, out of which the 1st resembles the 3rd and the 2nd resembles the 4th. They are the Mātrā Vṛttas of the Ardhasama type. The third group i. e., the Mātrāsamaka group, on the other hand, contains metres each of which consists of 4 lines of the same type and length. Our author has separated the last two groups (of metres of four lines each) from the first group and treated them in the third Adhyāya. On the other hand, he has picked out the group of the Ardhasama Varṇa Vṛttas beginning with Upacitraka from its proper place in the midst of the Varṇa Vṛttas—In Piṅgala, they are treated after the Viṣama and before the Sama Vṛttas of four lines each—and tacked it on to the Āryā group in Adhyāya second. Evidently he has done this because in both these groups, the *full half* of a stanza, whether it consists of one line or of two, has to be defined, whereas, in all other metres, including even the Vaitālīya group, only *one fourth* of a stanza is required to be defined, together with a few peculiarities of the odd or the even lines in the case of the Ardhasama Mātrā Vṛttas, other things being common to all the four lines. Thus in the 2nd chapter of our book, the Adhikārasūtra is *ardhe*, while that in chapters 3 to 7 it is *pāde*.

S. 2-3:—In each half of the Āryā, there are seven (इ) Caturmātra Gaṇas (गः) and one half more; among these seven, only those which occupy even places (i.e.,) 2nd, 4th and 6th can be of ज (ISI) type, but those in odd places must never be so. See for the same rules Piṅgala, 4. 14-15.

S. 4-8:—The 6th Caturmātra in the first half is either of the ज (ISI) type or of the नि (I,III) type. If it is the latter, a new word must be commenced with the 2nd Mātrā, the earlier word being finished with the 1st. If the 7th Caturmātra (इण्) be of the नि (IIII) type, a fresh word must be commenced with the very first Mātrā, the earlier word being completed with the last Mātrā of the 6th Caturmātra Gaṇa. This same rule holds good in the case of the 5th Caturmātra Gaṇa (डुण्) in the second half of the Āryā

(पदार्थे). If it is of the नि (I,III) type, a fresh word must be commenced with its very first Mātrā. In the second half of the Āryā the 6th Gaṇa (कृण्) is not a Caturmātra, but consists only of a single short letter (न् एव). For all these rules, compare Piṅgala, 4. 16-21.

S. 9-10:—That Āryā is called Pathyā, whose odd lines i. e., 1st and 3rd consist of three Caturmātra Gaṇas only. That which is not so is called Vipulā. These two Sūtras which resemble Piṅgala 4. 22-23 furnish an interesting commentary on the controversy about the number of lines in the Āryā metre. According to these rules, if a word is finished with the 3rd Caturmātra in the halves of the Āryā, the Yati is naturally introduced there and the half becomes automatically divided into two lines. In such cases, i. e., where both the halves are thus divided into two lines each, the Āryā must be considered as a metre of four lines. But if the end of the 3rd Caturmātra does not synchronise with also the end of a word in either or both the halves of the Āryā, the Yati is not introduced at the end of the 3rd Caturmātra, since the word, which is commenced but not finished in it, must be completed before a metrical pause is allowed. It is in such cases, where a natural Yati or metrical pause is not introduced at the end of the 3rd Caturmātra owing to the incomplete utterance of a word, that the halves of the Āryā are not felt as divisible into two lines each and consequently Āryā is felt and therefore regarded as a metre of two lines. Thus then the Pathyā Āryā is a metre of 4 and Vipulā Āryā a metre of 2 lines. But since there is no compulsion about the finishing of a word at the end of the 3rd Caturmātra, the Āryā on the whole, has been regarded as a metre of two halves i. e., two lines, by the metricians, like Piṅgala and others.

It is however, noteworthy that commentators usually regard Pathyā to be the normal type and Vipulā to be the exceptional one. They therefore, regard Vipulā (and not Pathyā) to be of three kinds i.e. Mukha, Jaghana and Ubhaya Vipulā, according as the characteristic of the unfinished word is found existing in the 1st or the 2nd or both the halves, See Halāyudha on Piṅgala, 4·23. Both Piṅgala and our author are silent about these divisions of Vipulā, showing thereby that perhaps by their time the public opinion had not yet definitely swung in favour of the view which regarded the Āryā as a metre of four lines.

S. 11–13:—An Āryā is called Capalā when the groups त् (SIS), ए (ISS), न् (I) and औ (SIS) follow in succession after the 2nd Mātrā of the 1st Caturmātrā (गर्ध); or in other words as it is put by Piṅgala, 4 24, when the 2nd and the 4th Caturmātras in each half are both preceded and followed by a long letter each, and are themselves of the ए or उ type (ISI) i.e., the जगण of Piṅgala. If this characteristic is found in the 1st half, the Āryā is called Mukha Capalā; if in the 2nd, it is called Jaghana Capalā; if in both, it is called Mahā Capalā. See Piṅgala, 4. 25-26. The last variety is not mentioned by our author expressly, nor by the commentator. Each of these three kinds of Capalā are possible in Pathyā as well as in the three Vipulās. Thus we have $4 \times 3 + 4 = 16$ varieties of Āryā; see Halāyudha on Piṅgala, 4. 20 (N. S. P. 3rd edition, p. 51).

S. 14:—If in the second half of the Āryā, the 6th (दूण्) Gaṇa is a full Caturmātra and does not consist of a single short letter, or in other words, if the 2nd half is similar to the 1st, the Āryā is called Gīti; cf. Piṅgala, 4.28. In this Sūtra, the words जघने च are to be supplied from Sūtra 13. All the rules applicable to the 6th Caturmātra, mentioned above in Sūtras 4 and 5 are also applicable here as the commentator reminds us.

S. 15:—If the 8th Gaṇa (दूण्) in the Gīti is a full Caturmātra (and not a half one), the same is called Āryāgīti. In this Sūtra, the words पूर्णश्चेत् दूण् are to be supplied from the last Sūtra, so that S. 15 literally means 'If the 6th and also the 8th Gaṇas are full Caturmātras the Āryā is called Āryāgīti'. Compare Piṅgala, 4. 31.

Other metres derived from the Āryā, like Upagīti and Udgīti (compare Piṅgala 4. 28, 29) are not mentioned by our author nor by his commentator, and strangely enough, the section on Āryā is brought to a conclusion with the Galitaka which has no connection with the Āryā nor is it a metre of two lines or halves. The only possible connecting link between the Āryā and the Galitaka is that the lines of both are made up of a definite number of the Caturmātra Gaṇas. None of the Mātrā Vṛttas from the Vaitālīya group have their lines thus composed. Really speaking, Galitaka is not a Sanskrit metre; at least it is not known as a Sanskrit metre to older Sanskrit metricians. Even Hemacandra who first mentions it, counts it among the Prakrit metres; besides, according

to him Galitaka is rather a classname of Prakrit metres of a particular type. See Hemacandra, Chandonuśāsana (JBBRAS. 1943) IV. 17 ff. But the Prakrit merte which exactly corresponds to our Galitaka is Lalitā of Virahāṅka, Vṛttajātisamuccaya (JBBRAS. 1929) IV. 60. In any case, it is very dillicult to guess the reason for which the Galitaka is regarded as a Sanskrit metre and further why it is defined at this place. The author, indeed, must have felt the incongruity of this metre coming under the 'adhikāra' of '*ardhe*' and so he has added the word *pratipādam* in its definition.

S. 16=A Galitaka stanza has four lines, each containing five and a half Caturmātras of any kind. The illustration by the commentator looks like a quotation.

Hereafter, in Sūtras 17–18, the author defines the Ardhasama Varṇa Vṛttas for reasons suggested above in the introductory note to this chapter. Each definition is made up of a pair of groups of symbols, the first of which gives the composition of odd lines, while the 2nd gives that of the even ones. I shall explain the definitions graphically as well as by giving the euqivalent Akṣara Gaṇas according to Piṅgala's system since this is very generally known. In showing the Gaṇas, I shall use full letters in the place of consonants for the sake of convenience.

S. 17—उपचित्रक : प, ई, व, औ ; ल, उ, ष, ए (ससलग; भभभगग).
=IIS, IIS, II, SIS, ; SI, ISI, ISI, ISS. See Piṅgala, 5. 32.

S. 18—द्रुतमध्या : ल, उ, ष, ए; ह, उ, ष, ए (भभभगग नजजय).
=SI, ISI, ISI, ISS; III, ISI, ISI, ISS. See Piṅgala, 5 33.

S. 19:—वेगवती : न, उ, ष, ए; ल, उ, ष, ए (सससग; भभभगग).
=I, ISI, ISI, ISS; SI, ISI, ISI, ISS. See Piṅgala 5. 34.

S. 20:—भद्रविराट् : य, ई, र, ए; क, ई, र, ए (तजरग; मसजगग).
=SS, IIS, IS, ISS; SSS, IIS, IS, ISS. See Piṅgala, 5. 35.

S. 21:—केतुमती : न, उ, स, ए; ल, उ, स, ए (सजसग; भरनगग).
=I, ISI, SII, ISS; SI, ISI, SII, ISS. See Piṅgala, 5. 36.

S. 22:—आख्यानिका: श, अ, र, ए; ष, अ, र, ए (ततजगग; जतजगग).
=SSI, SSI, IS, ISS; ISI, SSI, IS, ISS. See Piṅgala, 5. 37.

Both the mss. drop the illustration of Ākhyānikā and the definition of Viparīta Ākhyānikā. The verse यद्वाह etc. is an illustration of the latter, for whose definition see Piṅgala, 5. 38.

S. 24:—हरिणीप्लुता: व, ऋ, स, औ; ह, ऋ, स, औ (ससलग; नभभर).
=II, SII, SII, SIS; III, SII, SII, SIS. Compare Piṅgala, 5. 39.

S. 25:—मालभारिणी: व, ऋ, त, ए; प, ऋ, त, ए, (ससजगग; सभरय).
=II, SII, SIS, ISS; IIS, SII, SIS, ISS. See Hemacandra, N.S.P. edition, 1912, 3. 17. This is not mentioned by Piṅgala or Kedāra.

S. 26:—अपरवक्त्र: व, इ, ष, औ; ह, उ, ष, औ (ननरलग; नजजर).
= II, III, ISI, SIS; III, ISI, ISI, SIS. See Piṅgala, 5. 40.

S. 27:—पुष्पिताग्रा: ह, इ, त, ए; ह, उ, न, त, ए (ननरय; नजजरग).
= III, III, SIS, ISS; III, SIS, I, SIS, ISS. See Piṅgala, 5. 41.

S. 28:—यमवती: त, उ, त, न, औ; र, उ, त, र, ए (रजरजग; जरजरग).
=SIS, ISI, SIS, I, SIS; IS, ISI, SIS, IS, ISS. This is almost the same as यववती of Piṅgala, 5. 42; only our यमवती has one long letter more, at the end of the odd lines.

S. 29:—शिखा: 13 व, प; 14 व, प. व=II; प=ISS. Thus 13 व and प make 28 short letters followed by a long one in the odd lines. Similarly 14 व and प make 30 short letters followed by a long one, in the even lines. See Piṅgala, 5. 43. Piṅgala mentions also Khañjā which is just the reverse of Śikhā; our author does not mention it. The commentator too is silent about it.

ADHYĀYA III.

This Adhyāya defines the Sanskrit Mātrā-Vṛttas belonging to the Vaitālīya and the Mātrāsamaka groups. Every metre of these

groups consists of four lines, though in the case of the former group, the lines are not all of the same kind and length. So the author begins with the Adhikāra Sūtra *'pāde'* and gives the definition of a single line, mentioning at the same time the partial difference in the structure of some, wherever it exists.

S. 2-4:—These Sūtras give the composition of the concluding portion of all the lines of Vaitālīya, Aupacchandasika and Āpātalikā. It is respectively ल, औ (SI, SIS); ल, ए (SI, ISS); and त, ए (SIS, ISS). The mss. do not contain the illustration of Vaitālīya and the definition of Āpātalikā. I have reconstructed the latter by pure guesswork. See Piṅgala, 4. 32-34.

S. 5 and 6:—These two Sūtras give the composition of the remaining portion of the lines, both odd and even, of the three metres to which this portion is common. Thus Sūtra 5 lays down that the odd lines shall have 6 Mātrās (इ न: :—न् is a short letter and also 1 Mātrā) in it. But these short letters or Mātrās must always be used in pairs, and not singly or in groups of 3 or 5. In effect this restriction means that the 2nd and 3rd, 4th and 5th and 6th and 7th Mātrās at the commencement of a line must not be combined into a long letter. Sūtra 6 enjoins that the even lines shall have 8 short letters or Mātrās in this portion at the commencement of the lines of these metres. But in any case 8 short letters *in succession* shall not be employed there. According to Piṅgala, 6 short letters in succession are to be avoided in the case of the even lines, and Kedāra agrees with Piṅgala. The word द्वन्द्वम् in the last Sūtra is also to be understood here, so that the restriction equally applies to all lines whether odd or even. See Piṅgala, 4. 34-36.

S. 7 :—Supply वैतालीयं from S. 2, शेषे from S. 5 and युजो: from S. 6 in this Sūtra. So that it means: If in this porton, a long letter (म्) occurs after the 3rd Mātrā (त्रिगः) in the even lines, so as to combine the 4th and the 5th Mātrās, a Vaitālīya is called Prācyavṛtti. See Piṅgala, 4. 37, whose wording is slightly different.

S. 8:—A Vaitālīya is called Udīcyavṛtti, when a long letter is employed after the 1st Mātrā (दण्) in the odd lines. Supply वैतालीयं (S. 2), शेषे (S. 5) and म् (S. 7) in this Sūtra to complete the sense. Compare Piṅgala, 4. 38.

S. 9:—If both the characteristics mentioned in S. 7 and 8 are simultaneously found in a Vaitālīya, it is called Pravṛttaka. See Piṅgala, 4. 39.

S. 10–17:—These 8 Sūtras define the six metres belonging to the Mātrāsamaka group. For all these see Piṅgala, 4. 42–47. The order in which these six are defined is different with different authors according to their own convenience.

S. 10-12:—There are four (दो) Caturmātra groups (ग् = a Caturmātra group; see above I. 25) in each of the four lines of the Mātrāsamaka. Out of these four, the first (दण्) must not be of the ज (ISI) type and the third (दिण्) must be of the ई (IIS) type. The condititition about the 1st Caturmātra is actually mentioned by our author though it seems to be implied by Piṅgala and others. Piṅgala's commentator Halāyudha supplies शेषे परेण युङ् न सात्कम् in the definition of Mātrāsamaka too which would mean that the ज group (ISI) which 'combines the even Mātrā with its successor into a long letter' is to be avoided in all the four places of the Mātrāsamaka line. The restriction about the 1st group is, however, mentioned by writers on Prakrit metres as well, like Hemacandra (3.65) and author of Kavidarpaṇa (II. 19.) As regards the restriction about the third group, Piṅgala and others simply lay down that the 9th Mātrā shall always be represented by a short letter. But when we remember that when the 3rd group happens to be of any kind other than ई, the metre is either called Upacitrā or Vānavāsikā (see Sūtras 13-14 below), we must conclude with our author that in Mātrāsamaka, it must be of ई (IIS) type only.

S. 13-14:—When the third group of the Mātrāsamaka is either य (SS) or ऋ (SII), it is called Upacitrā; but it is called Vānavāsikā, when the thrid group is either ज (ISI) or नि (I,III).

S. 15-16:–The mss. drop the illustration of Vānavāsikā and the definition as well as the Bhāṣya of Viśloka. I have reconstructed the 15th Sūtra and its Bhāṣya from the Bhāṣya on S. 16. If the 2nd group in the Mātrāsamaka is ज (ISI) or नि (I,III), it is called Viśloka. If the 3rd group in the Viśloka is either ई (IIS), or ज (ISI) or नि (I,III), it is called चित्रा. In S. 16, we must supply दाणु ण्णि from S. 15, as is shown by च. पुनि = प, ज, न, इ, (IIS, ISI, I,III); See Piṅgala, 4. 43-46,

S. 17:—When the four Caturmātra groups are of any kind whatsoever without restriction, we get a Pādākulaka, which word literally means 'a promiscuous mixture of the lines' of Mātrāsamaka and its derivative metres. See Piṅgala, 4. 47.

S. 18:—The wording of the Sūtra is not clear to me even with the help of the Bhāṣya. Gītyāryā has four lines, each containing 16 Mātrās, all of which are represented by short letters. Jayadeva definitely states that his Acaladhṛti is the Gītyāryā of Piṅgala. Similarly Śikhā and Cūlikā (S. 19-20) of Piṅgala and our author are called Anaṅgakrīḍā and Atirucirā by Jayadeva and Kedāra.

S. 19:—When the Gītyāryā has the first two lines containing all long and the last two containing all short letters, it is called Viśikhā; this is called (Saumyā) Śikhā by Piṅgala, 4 51. Our author does not mention the opposite case which according to Piṅgala is (Jyotiḥ) Śikhā. Both Gītyāryā and Viśikhā are Sama Catuṣpadīs; whereas the Śikhā mentioned above at 2. 28 by our author is an Ardhasama Catuṣpadī. To bring out this distinction, our author calls one Śikhā and the other Viśikhā. Piṅgala, however, has kept the same name Śikhā for both, at 4. 49-52 and 5. 43-44.

S. 20:—Cūlikā is a Dvipadī and that too of the Ardhasama type. It has been mentioned here probably under the influence of Piṅgala. Besides, the name Viśikhā which suggests an improvement over Piṅgala, must have reminded him of the Śikhā, with which the Cūlikā is connected. The Cūlikā Dvipadī is equal to a half of the Śikhā mentioned above at 2. 28. Compare Piṅgala, 4. 52. Had convenience been the consideration for our author, he would have defined it just after Śikhā at 2. 28 above.

S. 21-24—The author now reverts to the Mātrāsama Catuṣpadīs, and so he wants us to supply the word गः from S. 10 above. Nṛtyagati has five Caturmātras in each of its four lines. Out of these, the 3rd and the 5th must consist of two long letters each, and the Yati must occur at the end of the 3rd Gaṇa. This definition of Nṛtyagati entirely agrees with that of Hemacandra (cf. N. S. P. ed. of 1912, p. 26 b, lines 2-3). But our author's illustration is rather unsatisfactory as regards the Yati in particular. In Hemacandra's illustration the Yati is quite obvious so much so

that a line actually looks as if it consists of two separate parts of three and two Gaṇas.

S. 25-28:—Naṭacaraṇa is a metre of four lines, each having three Caturmātras of which the last two must always consist of two long letters each. Here the Yati must come after the second Gaṇa. The definition of Naṭacaraṇa too agrees wholly with that of Hemacandra, p. 26a, last line. Our author's illustration in this case is very unsatisfactory. It does not observe the condition of the Yati, nor even of the last two Caturmātras consisting of all long letters. Hemacandra's illustration is quite appropriate, the Yati clearly dividing the line into two parts of 2 and 1 Gaṇas each. In effect Naṭacaraṇa is only a shortened form of Nṛtyagati, one Gaṇa being removed from each of the two parts separated by the Yati in every line.

Both these metres have a clear association with dancing as their names and composition show. No other writer on metres, so far as I know, has mentioned these two metres. Hemacandra and our author agree in that the metres are Sanskrit metres. Both mention them at the end of the Mātrāsamaka group. They do not seem to belong to the South, at least to Kannada prosody, since Jayakīrti does not mention them in the midst of other unusual Sanskrit metres which he defines at the end of ch. 6 (of. JBBRAS. 1945, p. 12).

ADHYĀYA IV.

This chapter treats of the three groups of the Viṣama Vṛttas (the metres of dissimilar lines) namely, the Udgatā group, the Padacaturūrdhva (called Dāmārārā in a very artificial manner by our author) group and the Anuṣṭubh Vaktra group. Our author has defined these groups in the descending order of the number of letters occuring in the first lines of their representatives. Thus the first line of Udgatā contains 13 letters, that of Dāmāvārā contains 8, and that of Anuṣṭubh Vaktra also contain 8 letters. The latter however, is considered as smaller than the former because, while the remaining three lines of the Anuṣṭubh Vaktra contain only 8 letters each, those of the Dāmāvārā contain 12, 16 and 20 letters in succession. It may be noted that these three groups are

treated in just the opposite order by Piṅgala, the Vaktra group being the first and the Udgatā group being the last.

The Anuṣṭubh Vaktra group of metres is treated as a group of Viṣama Vṛttas even though all the lines in a stanza in these metres contain 8 letters only and not less nor more; because, the construction of these lines is not uniform, ample freedom being allowed in the use of short and long letters except at certain places. Vaktra is really the class name of the metres of this group, Anuṣṭubh merely signifying that they belong to the Anuṣṭubh class out of the 26 classes of Vṛttas beginning with Gāyatrī and ending with Utkṛti. It is in this Anuṣṭubh class alone that we find some metres which, through they contain the same number of letters in all their lines, must nevertheless be considered as Viṣama Vṛttas owing to the dissimilar structure of their lines. This Anuṣṭubh Vaktra is indeed a legacy from the Vedic Anuṣṭubh and appears to have been carefully preserved in Sanskrit prosody through its preponderating use in the epics and in the Smṛtis. It has been spared the methodizing touch of the Sanskrit prosodists owing to its exhalted position (being used in the epics and Smṛtis), though it has not wholly escaped it. Another legacy from the Vedic metres was the Triṣṭubh Jagatī stanzas which are seen in the epics and other post-vedic literature of that same period. The lines of these metres as a rule contain the same number of letters, but their structure in respect of the use of short and long letters is absolutely free as in the case of their Vedic ancestors. But these have finally yielded to the persistent labours of the classical prosodist and have almost disappeared from the field. Yet even they have left a trace of their once important position and freedom in the metres known as the Upajātis. Indeed the freedom that is allowed here is restricted only to the first letter, which may be either short or long. But it is clear that at one time such free metres belonging to the Triṣṭubh or Jagatī class were allowed under the name Upajāti as is seen from the remarks of Kedāra, VR. 3. 4 and Hemacandra, 3. 117. See also Halāyudha on Piṅgala, 6. 17.

These three groups of Viṣama Vṛttas stand mutually distinguished. We have already seen above the nature of the Vaktra group. The Ḍāmāvārā group is characterized by the preponderance of short letters, the last two letters alone being long; while the third or the Udgatā group has lines containing a definite number

of letters, of course mutually unequal, which must follow a given order of succession of short and long syllables.

S. 1:—उद्गतः The four lines respectively contain 1 पउनउ (IIS, ISI, I, ISI); 2 नइषओ (I, III, ISI, SIS); 3 सइरई (SII, III, IS, IIS); 4 पउपउभ (IIS, ISI, IIS, ISI, S). Pingala and others call this metre by the feminine name Udgatā; of Pingala, 5. 25.

S. 2:—सौरभकः If the 3rd line of the Udgata were to contain तइमई (SIS, III, S, IIS), it is called Saurabhaka; cf. Pingala, 5. 26.

S. 3:—ललिताः If the 3rd line of the Udgata contains हइपई (i.e. III, III, IIS, IIS) it is called Lalitā. Pingala and Kedāra call it by the neuter name Lalita; cf. Pingala, 5. 27.

S. 4:—उपस्थितप्रचुपितः The four lines of this metre respectively contain कवओषए (SSS, II, SIS, ISI, ISS) वऋपरए (II, SII, IIS, IS, ISS,) षइनई (II, III, I, IIS,) and हइहरईम (III, III, III, IS, IIS, S,. See Pingala, 5. 28. Some five letters are missing in the mss. from the first line of the illustration. Similarly, the word *yathā* at the end of the third lime is redundant.

S. 5–6:—वर्धमान and शुद्धविराडर्षभ: If the 3rd line of Upasthitapracupita is doubled in length, it is called Vardhamāna and if the same line contains यईनऔ (SS, IIS, I, SIS) instead of its usual letter-groups, it is called Śuddhavirāḍarṣabha.

S. 7–10:—These Sūtras define the Padacaturūrdhva or Dāmāvārā group of metres. As a matter of fact, our author has chosen only one of the metres (namely Āpīḍa, of this group which has four different varities according to Pingala) and given its 24 varieties obtained by a mutual exchange of places among its four lines. In the Padacaturūrdhva there is a complete freedom of choice of short and long letters in the lines, their number alone being restricted, according to Pingala and others; but in the other three, namely Āpīḍa and Pratyāpīḍa of two kinds, there is no such freedom and all letters must be short, except the first or the last two which must be long, as the case may be; see Pingala, 5. 20-23. Our author has chosen only the Āpīḍa from these as said above whose lines contain respectively 8, 12, 16 and 20 letters all of which must be short, except the last two which must be long. Our author lays down an additional condition that at the end of every four

letters there will be a Yati. By a mutual exchange of places among the four lines, 24 different varieties are obtained whose names according to our author will be obtained by putting together the last letters of the four lines in succession (5. 10).

Piṅgala mentions only three varieties of the Padacaturūrdhva (see Halāyudha on Piṅgala 5.24) according as the 1st line exchanges it splace with the 2nd, the 3rd and the 4th lines, whose names he gives as Mañjarī (or Kalikā), Lavalī and Amṛtadhārā. Kedāra and others however, maintain that these three varieties are to be admitted only in the case of the Āpīḍa but not in that of the others. Jayakīrti, who calls the Āpīḍa and the two Pratyāpīḍas by the names Padaruci, Anupadaruci and Atipadaruci, admits the varieties, namely Kalikā Lavalī and Amṛtadhārā in each of the three.

S. 11–12:—The author now takes up the Viṣama Vṛttas belonging to the Anuṣṭubh class. The general name of these metres is Vaktra. See the introductory note on the three groups of the Viṣama Vṛttas.

S. 13-14:—The two Caturmātras i.e. स and इ (SII and III) must not occur at the beginning of the lines of a Vaktra. This means ultimately that the 2nd the 3rd letters must not be short simultaneously. This condition is expressed in other words by Piṅgala, 5.10, who says that the स (IIS) and the न (III) Gaṇas must be avoided after the first letter in every line. Similarly the group ए (ISS) must always be used after the 4th letter (दीर्घ) in all lines of the Vaktra.

S. 15-16:—These Sūtras tell us that if the ष (ISI) group is used after the 4th letter in the even lines of a Vaktra, it is called Pathyā Vaktra; but it is called Viparītapathyā Vaktra when this same group is used at the same place in the odd lines.

S. 17-18:—A Vaktra is called Capalā when the इ (III) group is substituted for the usual ए (ISS) group only in the odd lines after the 4th letter. It is called Vipulā when the 7th letter is short in the even lines. Eventually, Vipulā is the same as Pathyā-Vaktra which has the ष (ISI) group after the 4th letter in its even lines. But the alternative name is introduced here by the author, following the lead of Piṅgala, in order to mention Saitava's view about Vipulā. Saitava thinks that a Vaktra is called Vipulā, when short letter is

substituted for the long one which is enployed at the 7th place in *all* its lines (for, the group य i. e., ISS is laid down after the 4th letter according to 4. 14 above), and not merely in the even lines as held by our author and Piṅgala. The name Vipulā has also to be introduced by our author, for defining what he calls Vimalā, Vikalā, Viralā and Viśālā, but which are respectively described by Piṅgala and his followers as Bha-vipulā, Ta-vipulā and Na-vipulā.

S. 20:—The Vipulā will have the letters म, क, र and शा substituted in place of the middle letter i. e., पु of its name, according as the भ (SII), भ (SSI), त (SIS) and इ (III) Gaṇas are respectively substituted for the usual य (ISS) in *all* the lines of Vaktra after the 4th letter. We must supply द्वीणः from S. 14.

The difference between the Capalā and Na-vipulā i. e., Viśālā is that in Capalā, इ (III) occurs after the 4th letter only in the odd lines, while in the Na-vipula i. e., Viśālā of our author, it so occurs in *all* the four lines. Like the other Gaṇas, even क or प (SSS or IIS) may occur after the 4th letter in a line; see Halāyudha on Piṅgala 5. 19, and Hemacandra, (N. S. P. edi.) p. 22a, line 7ff. There is a slight difference, however, between our Vimalā etc. and the Bhavipulā etc., of Piṅgala and Hemacandra. The Gaṇas that are introduced after the 4th letters are to be for *all* the four lines according to our author; while they are to be introduced only in the odd lines, in the opinion of Piṅgala and Hemacandra, the even lines having the ज (ISI) or their जगण after the fourth letter.

It will thus be seen, that when all the different varieties of the Vaktra are taken together, there is complete freedom of employing a short or long letter at any place in the line as there was in the Vedic Anuṣṭubh; but there is only one important exception in the case of letters at the 2nd and the 3rd place. It is that two short letters must not be *simultaneously* used at the 2nd and the 3rd places in a line as said above in S. 13 and at Piṅgala, 5.10. Piṅgala 5.11 also lays down that in the case of even lines, a Ragaṇa (SIS) must not be used after the 1st letter. This in effect means that if the 2nd letter is long, the 3rd also must be long. This restriction however, is not admitted either by our author or by Hemacandra, or even by Kedāra and Jayadeva.

ADHYĀYA V.

S. 1 and 2:—Any metre belonging to any class from Gāyatrī to Utkṛti is called Samāna when long and short letters occur in regular succession in its lines. ल् is a group of a long and a short letter (IS). On the other hand, any metre from the above mentioned classes i.e., from Gāyatrī to Utkṛti is called Pramāṇa when short and long letters are similarly employed. र् is a group of a short and a long letter (IS). Piṅgala and his successors apply the names Samāna and Pramāṇa—rather their feminine forms—to metres of the Anuṣṭubh class only and not to others. Our author stands alone in extending their application to all metres which belong to the classes beginning with Gāyatrī and ending with Utkṛti. Naturally therefore, he defines them here at the beginning of the treatment of metres belonging to the Gāyatrī and the other classes; whereas Piṅgala and others define them on the first occasion when they treat the metres of the Anuṣṭubh class, i.e., when they define the Anuṣṭubh Vaktra at the beginning of the Viṣama Vṛttas. See Piṅgala, 5. 6–8. The actual metre chosen for illustration by our commentator is of the Jagatī class.

S. 3:—A metre containing any other arrangement of short and long letters in its lines and belonging to one of the classes from Gāyatrī to Utkṛti is called Vitāna. Piṅgala and others restrict this name too, to metres of the Anuṣṭubh class, while our author extends it to all the classes, like Samāna and Pramāṇa. As a matter of fact, Vitāna is a common name which is well applicable to all the following metres defined in chs. 5-7 of our work, since Vitāna is evidently intended to be a metre of similar lines of same length by our author and also by Piṅgala, even though the latter defines it at the commencement of his chapter on Viṣama Vṛttas. The illustration of our commentator is the metre of the Jagatī class having त (SIS), ह (III), स (SII) and प (IIS) groups in each of its lines.

S. 4:—This is an Adhikāra Sūtra. The four metres defined in S. 5-8 belong to the Gāyatrī Class.

S. 5:—तनुमध्याः A line has त्, य्=SSI, ISS. See Piṅgala, 6.2.

S. 6:—मुकुलिताः A line has न्, य्=III, ISS. Piṅgala does not

define the metre. Kedāra, 3.8 and Hemacandra, 2.39 call it शशिवदना; while Bharata, 16·34; 32. 80 calls it मकरशीर्षा.

S. 7:—सूचिमुखी: A line has य, आ (IIS, SSS). This is unknown to Piṅgala and Kedāra; Hemacandra, 2·50 calls it सूचीमुखी.

S. 8:—शिखण्डिनी: A line has च, आ (ISS, SSS). Unkown to Piṅgala and Kedāra, but defined by Hemacandra, 2. 51.

S. 9:—Adhikāra Sūtra.

S. 10:—कुमारललिता: A line has ष, ई, म (ISI, IIS, S); See Piṅgala, 6. 3.

S. 11:—वज्रक:—A line has श. ई, म, (SSI, IIS, S). Unknown to Piṅgala and Kedāra, but defined as भ्रमरमाला by Hemacandra, 2·57 and Bharata, 16·20 and 32. 107.

S. 13:—माणवकक्रीडितक: A line has म, ई, म, ई (S, IIS, S, IIS). Compare Piṅgala, 6. 4.

S. 14:—चित्रपद: A line has म, ई, न, ए (S, IIS, I, ISS); see Piṅgala, 6. 5.

S. 16:—भुजगशिशुसृता: A line has व, इ, न, आ, (II, III, I, SSS). Compare Piṅgala, 6. 7.

S. 17:—तरङ्गवती: A line has ल, ओ, न, ओ (SI, SIS, I, SIS) The mss. actually read तानौ, but the scheme contained in the illustration is as given by me, so I have conjectured the reading लौनौ. This too is unknown to Piṅgala and Kedāra. Hemacandra, 2. 106 defines it under the name कामिनी.

S. 19:—शुद्धविराट्: A line has म, अ, ष, ओ (S, SSI, ISI, SIS). Compare Piṅgala, 6. 9.

S. 20:—पणव: A line has म, अ, इ, आ (S, SSI, III, SSS). Compare Piṅgala, 6. 10.

S. 21:—उपस्थिता: A line has श, उ, न, ओ (SSI, ISI, I, SIS). Compare Piṅgala, 6. 14.

S. 22:—रुक्मवती: A line has ल, ए, ल, ए, (SI, ISS, SI, ISS); compare Piṅgala, 6. 11.

S. 23:—मत्ता : A line has म, आ, इ, ए (S, SSS, III, ISS). Compare Pingala, 6. 13.

S. 25:—इन्द्रवज्रा : A line has श, अ, र, ए (SSI, SSI, IS, ISS). Compare Pingala, 6. 15.

S. 26:—उपेन्द्रवज्रा : A line has ष, अ, र, ए (ISI, SSI, IS, ISS). Compare Pingala, 6, 16.

S. 27:—इन्द्रमाला : Another name of the Upajāti : Mandāramaranda-campū (Kāvyamālā ed. 1895, p. 8, line 7) calls it उपेन्द्रमाला; but every other writer that I know of calls it उपजाति.

S. 28:—दोधक : A line has ल, उ, ष, ए, (SI, ISI, ISI, ISS). Compare Pingala, 6. 18.

S 29:—रथोद्धता : A line has त, इ, ल, ओ (SIS, III, SI, SIS). Compare Pingala, 6. 22.

S. 30:—स्वागता : A line has त, इ, ल, ए (SIS, III, SI, ISS). Compare Pingala, 6. 23.

S. 31:—श्येनी : A line has त, उ, ल, ओ (SIS, ISI, SI, SIS). Compare Pingala, 6. 25.

S. 32:—सुभद्रिका : A line has व, इ, ष, ओ (II, III, ISI, SIS). Unknown to Pingala. Hemacandra, 2. 143 calls it भद्रिका.

S. 33:— सारिणी : A line has र, इ, त, ओ (IS, III, SIS, SIS). Unknwn to Pingala and Kedāra. Hemacandra's सारणी, 2. 153, is slightly different at the beginning. It has सजयलग (IIS, ISI, ISS, IS).

S. 34:—वृन्ता : A line has व, इ, इ, आ (II, III, III, SSS). Compare Pingala, 6. 24.

S. 35:—शालिनी: A line has म, आ, ल, य, ए (S, SSS, SI, SS, ISS). The Yati is after the 4th letter (ली). See Pingala, 6. 19.

S. 36:—वातोर्मिमाला : A line has म, आ, व, य, ए (S, SSS, II, SS, ISS). The Yati is the same as in the last metre. Pingala calls this metre वातोर्मि (6. 20) and mentions another Yati after the 7th letter.

S. 37:—भ्रमरविलसिता : A line has य, अ, इ, ई (SS, SSI, III, IIS). The Yati is after the 4th letter as before. See Pingala, 6. 21.

ADHYĀYA VI.

S. 1:—This is the Adhikāra Sūtra for S. 2-12.

S. 2:—भुजङ्गप्रयात : A line has as many च (ISS) groups as would make it a Jagati line i. e., a line of 12 letters. See Piṅgala, 6. 37.

S. 3:—तोटक : A line has similarly the प (IIS) groups. See Piṅgala, 6. 31.

S. 4:—वंशस्था : A line has ष, अ, ष, औ (ISI, SSI, ISI, SIS). See Piṅgala, 6. 28.

S. 5:—इन्द्रवंशा : A line has श, अ, ष, औ (SSI, SSI, ISI, SIS). See Piṅgala, 6. 29.

S. 6:—वंशमाला: This is the name given to a metre whose lines are made up promiscuously by the mixture of the last two metres. See above इन्द्रमाला, which is similarly made up by a mixture of इन्द्रवज्रा and उपेन्द्रवज्रा. Both इन्द्रमाला and वंशमाला are names formed with the help of the word-elements (i. e. इन्द्र and वंश) common to the names of metres from whose mixture they are made. Older writers like Piṅgala and Hemacandra, give another significant name उपजाति, 'a secondary i. e. a mixed class' to both these metres and also to other metres which are similarly formed by a mixture of lines of metres whose length is the same. See Halāyudha on Piṅgala, 6. 17, and Hemacandra, (N. S. P. ed.) 1912, p. 7a, lines 10-20. A mixture of lines different even in length in addition to structure is allowed by Hemacandra; but the view of Piṅgala and Kedāra is doubtful.

S. 7:—प्रमिताक्षरा: A line has प, ज, प, ई (IIS, ISI, IIS, IIS). See Pingala, 6.39.

S. 8:—नवमालिनी: A line has ह, ज, स, ए (III, ISI, SII, ISS). See Piṅgala, 6.43, who, along with Kedāra and Hemacandra, calls it नवमालिनी.

S. 9:—द्रुतविलम्बित: A line has ह, क्ष, स, औ (III, SII, SII, SIS). See Piṅgala, 6.30.

S. 10:—वैश्वदेवी: A line has क, आ, च, ए (SSS, SSS, ISS, ISS). The Yati occurs after the 5th letter (इ). See Piṅgala, 6.41.

S. 11:—जलोद्धतगति: A line has ष, ई, ष, ई (ISI, IIS, ISI, IIS). The Yati occurs after the 6th letter (ऋ). See Piṅgala 6.33.

S. 12:—कुटा: A line has ह, इ, क, ए (III, III, SSS, ISS). The Yati occurs after the 8th letter (दृ). See Pingala, 6.32.

S. 14:—प्रहर्षिणी: A line has क, इ, न, त, ए (SSS, III, I, SIS, ISS). The Yati is after the 3rd letter (दि). See Pingala, 7.1.

S. 15:—रुचिरा: A line has न, ओ, व, ई, न, ओ (I, SIS, II, IIS, I, SIS). The Yati is after the 4th letter (दी). See Pingala 7.2.

S. 16:—मत्तमयूर: A line has म, आ, ल, ए, न, ए (S, SSS, SI, ISS, I, ISS). The Yati is after the 4th letter as before. See Pingala 7.3.

S. 18:—वसन्ततिलक: A line has म, ओ, न, ई, प, ए, (S, SIS, I, IIS, ISS, ISS). See Pingala, 7, 8-10. Our author does not mention the other names of this metre, namely, सिंहोन्नता and उद्धर्षिणी given to it respectively by Kaśyapa and Saitava.

S. 19:—असंबाधा: A line has क, अ, इ व, आ, (SSS, SSI, III, II, SSS). The Yati is after the 5th letter (इ). See Pingala, 7.5.

S. 20:—अपराजिता: A line has इ, इ, म, उ, न, ओ (III, III, S, ISI, I, SIS). The Yati is after the 7th letter (इ). See Pingala 7.6.

S. 21:—राजरमणीय: A line has ष, ई, त, व, ए (ISI, IIS, SIS, II, ISS). The Yati is after the 7th letter. Unknown to Pingala and Kedāra; Hemacandra, 2.229, however, defines it.

S. 22:—प्रहरणकलिका(ता): A line has व, इ, र, इ, न, ई (II, III, IS, III, I, IIS). The Yati is after the 7th letter. Pingala, 7.7 calls it प्रहरणकलिता. The wording of the Sūtra and the Bhāṣya supports the name प्रहरणकलिका, which is also supported by Kedāra; but the illustration seems to support प्रहरणकलिता.

S. 24:—चन्द्रवर्त्मा: A line has व, इ, व, इ, व, ई (II, III, II; III, II, IIS). This is known as चन्द्रावर्ता to Pingala, 7. 11 and as शशिकला to Hemacandra, 2. 243 and Kedāra. No fixed Yati.

S. 25:—माला: If the चन्द्रवर्त्मा, which evidently has no Yati, happens to have a Yati regularly after the 6th letter (दृ) in all lines, it is called माला. See Pingala, 7. 12.

S. 26:—मणिगणनिकरा: The same चन्द्रवर्त्मा is called मणिगणनिकरा if it has the regular Yati after the 8th letter (दृ) See Pingala, 7. 13.

S. 27:—मालिनी : A line has व, इ, र, अ, य, ए (II, III, IS, SSI, SS, ISS). The Yati is after the 8th letter. See Piṅgala, 7. 14. The illustration is from Bhāsa's Pratijñāyaugandharāyaṇa, II 3.

S. 29:—ललना : A line has त, इ, इ, इ, न, ई (SIS, III, III, III, I, IIS). Unknown to Piṅgala and Kedāra; Hemacandra, 2. 283 however, defines it. The illustration seems to be from some drama. It mentions नन्द and वररुचि, the latter announcing his arrival to the former through the Pratihāri (Lalanā). The stanza seems to have been composed by the commentator as it contains the name of the metre artificially introduced; it is therefore possible that the author may have quoted it from his own drama.

S. 30:—वेल्लिता : A line has प, ई, इ, इ, म, आ (IIS, IIS, III, III, S, SSS). The Yati is after the 6th letter. Even this metre is known only to Hemacandra, 2. 284.

S. 31:—वृषभगजविलसिता : A line has स, ओ, वं, इ, व, ई (SII, SIS, II, III, II, IIS). The Yati is after the 7th letter (इ). See Piṅgala, 7. 15.

S. 32:—कोमललता : A line has क, अ, व, आ, र, ओ (SSS, SSI, II, SSS, IS, SIS). The Yati is twice, once after the 4th and then after the next 5th letter. This metre too is known to Hemacandra, 2. 285, alone.

S. 34:—पृथ्वी : A line cotains ष, ई, ष, ई, र, ओ (ISI, IIS, ISI, IIS, IS, SIS). The Yati is mentioned after the 8th letter by Piṅgala, 7. 17 and his successors, but not by our author.

S. 35:—हरिणी: A line has व, इ, क, अ, स, ओ (II, III, SSS, SSI, SII, SIS). The Yati is after the 6th letter. Compare Piṅgala, 7.16 who mentions a second Yati after the 10th letter.

S. 36:—शिखरिणी: A line has र, आ, स, इ, श, ई (IS, SSS, SII, III, SSI, IIS). The Yati is after the 4th letter. See Piṅgala, 7.20.

S. 37:—मन्दाक्रान्ता: A line has क, ऋ, इ, अ, य, ए (SSS, SII, III, SSI, SS, ISS). The Yati is (after the 4th letter and then after the next 6th letter. See Piṅgala, 7.19.

S. 38:—वंशपत्रपतित: A line has ल, उ, स, उ, इ, ई (SI, ISI, SII, ISI, III, IIS). The Yati is after the 10th letter. See Piṅgala, 7.18.

ADHYAYA VII.

S. 1:—This is an Adhikāra Sūtra for Sūtras 2-3.

S. 2:—कुसुमितलतावेल्लिता: A line has म, आं, ल, इ, न, अ, य, ए (S, SSS, SI, III, I, SSI, SS, ISS). The Yati occurs twice, first after the 5th letter and then after the next 6th. See Pingala, 7.21.

S. 3:—वाचालकाञ्ची: A line has क, औ, स, ए, त, औ (SSS, SIS, SII, ISS, SIS, SIS). The Yati is after the 11th letter. This metre is unknown to Pingala and Kedāra. Hemacandra, 2.300 calls it काञ्ची, but says that others call it वाचालकाञ्ची.

S. 5:—शार्दूलविक्रीडित: A line has म, अ, न, औ, व, ए, त, औ (S, SSI, I, SIS, II, ISS, SIS, SIS). The Yati is after the 12th letter. See Pingala, 7.22.

S. 6:—वायुवेगा: A line has म, अ, र, उ, प, इ, न, औ (S, SSI, IS, ISI, IIS, III, I, SIS). The Yati is after the 12th letter. This too is unknown to Pingala and Kedāra. Hemacandra, 2. 322 alone defines it.

S. 7:—माधवीलता: A line has क, औ, ल, इ, म, ई, न, औ (SSS, SIS, SI, III, S, IIS, I, SIS). The Yati is after the 7th letter. Like the last, this is known only to Hemacandra, 2.232.

S. 9:—दीपिकाशिखा: A line has स, इ, च, इ, इ, ल, औ (SII, III, ISS, III, III, SI, SIS). The Yati is after the 3rd letter and then again after the 6th thereafter. This also is known only to Hemacandra, 2.343.

S. 10:—सुवदना: A line has य, अ, श, इ, व, आ, न, ई (SS, SSI, SSI, III, II, SSS, I, IIS). The Yati is after the 7th letter. See Pingala, 7. 23.

S. 12:—स्रग्धरा: A line has क, औ, म, इ, इ, अ, य, ए (SSS, SIS, S, III, III, SSI, SS, ISS). The Yati is after every 7th letter. See Pingala, 7. 25. Even though इ can be supplied here from S. 10, still the author has used the word इइ in this Sūtra to indicate that the अनुवृत्ति is allowed in metres belonging to the same class only and that it does not go beyond it. Thus our इइ can be supplied in the next Sūtra which belongs to the same Adhikāra i. e., Prakṛti.

S. 13:—कथागति: A line has अ, औ, न, अ, इ, न, उ, स, औ (S, SIS, I,

SSI, III, I, ISI, SII, SIS). The Yati is after every 7th letter. Even this metre is known only to Hemacandra, 2. 346.

S. 14:—ललितविक्रम : A line has स, त, इ, त, इ, त ओ (SII, SIS, III, SIS, III, SIS, SIS). The Yati is after the 10th letter. This too is known only to Hemacandra, 2. 347.

S. 16:—मद्रक : A line has म, ई, ष, ई, ष, ई, ष, ई, (S, IIS, ISI, IIS, ISI, IIS, ISI, IIS). The Yati is after the 10th letter as in the last metre. See Pingala, 7. 26.

S. 17:—दीपार्चि : A line has क, ई, र, इ, त, इ, ल, ओ (SSS, IIS, IS, III, SIS, III, SI, SIS). The Yati occurs after the 12th letter. Hemacandra, 2. 357 alone, knows this metre.

S. 19:—वृन्दारक : A line has र, इ, त, इ, त, औ त, औ (IS, III, SIS, III, SIS, SIS, SIS, SIS). No Yati is mentioned. This metre too is known to Hemacandra, 2. 364 only.

S. 20:—अश्वललित : A line has व, ई, ष, ई, ष, ई, ष, ई (II, IIS, ISI, IIS, ISI, IIS, ISI, IIS). The Yati is after the 11th letter (दे). See Pingala, 7. 27.

S. 21:—मन्दक्रीडा: A line has क, आ, श, इ, द, इ, व, ई (SSS, SSS, SSI, III, III, III, II, IIS). The Yati is after the 8th letter. The second Yati after the next 5th letter is not mentioned by our author. See Pingala, 7.28; Hemacandra, 2.359. Both call it मत्ताक्रीडा.

S. 23:—तन्वी: A line has स, अ, इ, ई, स, ऋ, द, ए (SII, SSI, III, IIS, SII, SII, III, ISS). The Yati occurs after the 12th letter (दै). See Pingala, 7.29.

S. 24: –विभ्रमगतिः A line has क, ई, ष, ई, श, अ, स, ओ (SSS, IIS, ISI, IIS, SSI, SSI, SII, SIS). The Yati occurs after the 12th letter as before. Hemacandra, 2.371, who alone knows this metre, does not mention any Yati.

S. 26:—क्रौञ्चपदः A line has ल, ए, ल, ए, व, इ, व, इ, व, ई (SI, ISS, SI, ISS, II, III, II, III, II, IIS). The Yati is after the 10th letter (दृ्लु). See Pingala, 7.30.

S. 27:—हंसपदा: A line has य, ई, य, ई, व, इ, व, इ, व, ई (SS, IIS, SS, IIS, II, III, II, III, II, IIS). The Yati is after the 10th letter as before. Unknown to Pingala and Kedāra. Hemacandra, 2. 374 and Kavidarpaṇa, 4.100 alone define it.

S. 29:—अपवाह : A line has क, इ, व, इ, व, इ, व, इ, व, आ (SSS, III, II, III, II, III, II, III, II, SSS). The Yati is after the 13th letter (दो). See Piṅgala, 7. 32.

S. 50:—आपील : A line has स, इ, व, इ, य, अ, व, इ, व, ई (SII, III, II, III, SS, SSI, II, III, II, IIS). The Yati is after the 13th letter. Unknown to Piṅgala and Kedāra. Hemacandra, 2. 378, alone knows it but calls it आपीड and mentions the Yati after the 14th letter.

S. 31:—भुजङ्गविजृम्भितः : A line has क, आ, श, इ, ह, इ, म, उ, न, औ (SSS, SSS, SSI, III, III, III, S, ISI, I, SIS). The Yati is after the 8th and then after the next 11th letter. She Piṅgala, 7, 31.

S. 32:—अतिच्छन्दस् : When 8 more short letters (न् अष्ट) are added in the middle of the भुजङ्गविजृम्भित, it is called अतिच्छन्दस्. This metre is mentioned only by our author so far as I know. कंरभ of Hemacandra, 2. 386 contains 9 additional short letters in the middle of the भुजङ्गविजृम्भित.

S. 33:—चण्डवृष्टिप्रयात : A line has इ, इ and (seven) त groups. (III, III and SIS seven times repeated). The number of the SIS groups must be such as would make the metre अतिच्छन्दस् i. e., a metre whose line is longer than that of the उत्कृति class of metres; and that number is seven. See Piṅgala, 7. 34, who mentions other kinds of the Daṇḍakas too. Our author is silent about them.

S. 34:—गाथा is a common name applied to any other irregular metre which cannot be included under any of the classes discussed so far (अप्रसिद्धा). The illustration is a stanza in the Triṣṭubh class, without any definite order of short and long letters and with one letter more in its first line. The stanza is from the Mahābhārata and is also quoted for the same purpose by Rāmcandra Kavibhāratī on Vṛttaratnākara, 5. 15. Piṅgala 8. 1, Kedāra 5. 15, and Hemacandra, 7. 73, all agree about the name Gāthā which is thus applicable to any irregular metre which has been sanctioned by ancient use in popular or epic poetry. The derivative meaning of the word Gāthā is 'what is sung' (from *gai* to sing).

ADHYĀYA VIII.

This Adhyāya treats of the six Pratyayas, namely, Prastāra, Naṣṭa, Uddiṣṭa, Lagakriyā, Saṁkhyā and Adhvan. I have explained these in full in my introduction to chapters V-VI of Virahāṅka's Vṛttajātisamuccaya, JBBRAS., Vol. 18, 1932.



I INDEX OF VERSES.

श्लोकसूची

II INDEX OF NAMES OF METRES.

वृत्तनामसूची

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के प्रकाशन

[प्राकृत ग्रन्थ]

१. **महाबन्ध** [महाधवल सिद्धान्त]–प्रथम भाग, हिन्दी अनुवाद सहित। सम्पादक–पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर न्यायतीर्थ। मूल्य १२)

२. **करलक्खण** [सामुद्रिक शास्त्र]--हिन्दी अनुवाद सहित। हस्तरेखा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ। सम्पादक—प्रो. प्रफुल्लचन्द्र मोदी एम. ए.। मूल्य १)

[संस्कृत ग्रन्थ]

३. **मदनपराजय**—मूल ग्रन्थकार कवि नागदेव। भाषानुवाद तथा ७८ पृष्ठ की विस्तृत प्रस्तावना सहित। जिनदेव के द्वारा काम के पराजय का सरस सुन्दर रूपक। सम्पादक और अनुवादक—प्रो. राजकुमार साहित्याचार्य, बडौत। मूल्य ८)

४. **कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची**—मूडबिद्री के जैनमठ, जैन सिद्धान्त भवन, सिद्धान्तवसदि आदि, जैनमठ कारकल, मूडबिद्री के अन्य ग्रन्थ भंडार तथा अलियूर के ग्रन्थ भंडारों के ३५३८ अमूल्य ताडपत्रीय ग्रन्थों का सविवरण परिचय। सम्पादक—पं० के० भुजबली शास्त्री। मूल्य १३)

५. **न्यायविनिश्चय विवरण** [प्रथम भाग]—अकलङ्कदेव कृत न्यायविनिश्चय की वादिराज सूरिरचित व्याख्या। विस्तृत हिन्दी प्रस्तावना में इस भाग के ज्ञातव्य विषयों का हिन्दी में विषय परिचय है। स्याद्वाद, सप्तभंगी आदि के सम्बन्ध में भ्रान्त धारणाओं की आलोचना की गई है। सम्पादक—प्रो. महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य। बड़ी साइज पृष्ठ सं. ६००। मूल्य १५)

६. **तत्त्वार्थवृत्ति**—श्रुतसागर सूरिरचित टीका। हिन्दी सार सहित। १०१ पृष्ठ की विस्तृत प्रस्तावना में तत्त्व, तत्त्वाधिगम के उपाय, सम्यग्दर्शन, अध्यात्म नियतिवाद, स्याद्वाद, सप्तभंगी आदि का नूतन दृष्टि से विवेचन। सम्पादक—प्रो. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य। बड़ी साइज पृष्ठ सं. ६४०। मूल्य १६)

[हिन्दी ग्रन्थ]

७. **मुक्तिदूत** [उपन्यास]—अञ्जना-पवनञ्जय की पुण्यगाथा। सर्वत्र प्रशंसित, गद्य का उत्कृष्ट नमूना। लेखक—वीरेन्द्रकुमार एम. ए.। मूल्य ४॥)

८. **पथचिह्न** [संस्मरण]—स्वर्गीया बहिन के पवित्र संस्मरण और युगविश्लेषण। संस्कृति और कला की स्वाभाविक झलक, मनोरम भाषा और मनोहर शैली। मर्मज्ञों द्वारा प्रशंसित। मूल्य २)

९. **दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ**—चौसठ लौकिक धार्मिक और ऐतिहासिक कहानियों का संग्रह। भाषा सरल और रोचक है। व्याख्यान तथा प्रवचनों में उदाहरण देने योग्य। मूल्य ३)

१०. शेरो-शायरी [उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज्म]—लेखक—अयोध्याप्रसाद गोयलीय। प्राचीन और वर्तमान कवियों में सर्वप्रधान लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय।

सुरुचिपूर्ण मुद्रण। कपड़े की जिल्द। पृष्ठ सं. ६४०। मूल्य ८)

११. आधुनिक जैन कवि—वर्तमान कवियों का कलात्मक परिचय और सुन्दर रचनाएँ
सम्पादक—रमा जैन। मूल्य ३॥)

१२. जैनशासन—जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन करानेवाली सुन्दर रचना।
लेखक—पं. सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर न्यायतीर्थ। मूल्य ४।-)

१३. कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न—मूल लेखक गोपालदास जीवाभाई पटेल। अनुवादक—पं. शोभाचन्द्र जी भारिल्ल न्यायतीर्थ। आ० कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन महान् ग्रन्थों का संक्षिप्त और सरल भाषा में विषयपरिचय। मूल्य २)

१४. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—[हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास तथा परिचय] लेखक—कामताप्रसाद जैन। मूल्य २॥=)

१५. पाश्चात्य तर्कशास्त्र [प्रथम भाग] भिक्षु जगदीश काश्यप एम. ए.। मूल्य ६)

प्रचारार्थ पुस्तकें मंगाने वाले महानुभावों को विशेष सुविधा।

❀

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का
अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण

